जलतरंग

माझगांव डॉक शिपबिल्डर्स लिमिटेड की राजभाषा पत्रिका

अंक 10 सितंबर 2018

भारतीय वैज्ञानिक

अध्ययन विकास के माध्यम से व्यवसाय उत्कृष्टता के लिए एमडीएल को 13वां मुंजाल पुरस्कार। भूतपूर्व राष्ट्रपति श्री प्रणव मुखर्जी से पुरस्कार प्राप्त करते हुए कमोडोर राकेश आनन्द, अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक, श्री संतोष कुमार मल्लिक मप्र(मा स), कमोडोर टी वी थामस नि (सयो एवं का) एवं श्री संजय मिश्र मुप्र (मा.सं)

टालिक द्वारा राजभाषा पत्रिका का प्रथम पुरस्कार प्राप्त करते हुए श्री संजीव शर्मा नि (वित्त), कमांडर गौरव अग्रवाल, श्री पी डी सिद्दीकी, श्री रामप्रीत यादव, सुश्री जयंतिका मुखर्जी एवं श्री सिमनलाल आर्य

जलतरंग

माझगांव डॉक शिपबिल्डर्स लिमिटेड की राजभाषा पत्रिका

संरक्षक

कमोडोर राकेश आनन्द, अध्यक्ष एवं प्रबन्ध निदेशक

मुख्य परामर्शदाता

श्री संतोष कुमार मल्लिक, महाप्रबंधक/विभाग प्रमुख (मानव संसाधन)

संपादक मण्डल

श्री सोपान एस कांबले, महाप्रबंधक (मा सं एवं क सं)
श्री श्रीनिवास सिन्हा, उप महाप्रबंधक (मा.सं - राभा)
श्री रामप्रीत यादव, सहायक प्रबंधक, राजभाषा
श्री पी डी सिद्दीकी, सहायक प्रबंधक, राजभाषा
सुश्री जयंतिका मुखर्जी, वरिष्ठ राजभाषा अनुवादक

मुद्रक

न्यू जैक प्रिंटिंग प्रेस प्रा. लि.

बी-5/130, मित्तल इंडस्ट्रियल इस्टेट, मरोल नाका,
अंधेरी-कुर्ला रोड, मुंबई - 400 059
फोन नं. +91-22-67721000

प्रकाशक

राजभाषा अनुभाग

माझगांव डॉक शिपबिल्डर्स लिमिटेड
माझडॉक हाउस, दूसरी मंजिल, डॉकयार्ड रोड, मुंबई - 400 010
फोन नं. +91-22-23710456

विषय-सूची

अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक की कलम से... 3

निदेशक (समवाय योजना एवं कार्मिक) का संदेश.......4

महाप्रबंधक (मानव संसाधन) का संदेश..................5

सम्पादक की कलम से..6

आर्यभट्ट..7
पी डी सिद्दीकी
सहायक प्रबन्धक (राभा)

डॉ. एम. एस. स्वामीनाथन 11
अशोक शेल्हालकर

डॉ. हरगोविन्द खुराना 14
सिमनलाल आर्य

ए.पी.जे. अब्दुल कलाम 17
श्यामला वाघरे

श्रद्धा के आँसू.. 23
प्रकाश चन्द्र झा

डॉ. प्रफुल्लचंद्र राय...................................... 26
जयप्रकाश यादव

सर चंद्रशेखर वेंकटरमन 30
गीता सुनतकरी

एमडीएल उत्पादन 34

पनडुब्बी कमीशनिंग समारोह 35

गणमान्य अतिथियों का एमडीएल दौरा 36

सीपीआरएम 38

सीएसआर कार्यक्रम 39

राजभाषा बैठक और हिन्दी दिवस समारोह............. 40

मेघनाथ साहा... 41
झाहीद माझगांवकर

होमी जहाँगीर भाभा 46
बलीराम कमल भोइर

डॉ. सुब्रह्मण्यम चंद्रशेखर 50
प्रदीप महाडेश्वर

आप बीती 53
काले खान

बचपन 56
राजराजेश्वरी भट

डॉ. विक्रम साराभाई 57
जयंतिका मुखर्जी

डा. बीरबल साहनी... 60
श्रीनिवास सिन्हा

प्रोफेसर प्रशांत चंद्र महालनबीस........................ 63
अशोक उबाले

डॉ. जगदीशचंद्र बसु 66
पल्लवी जलगांवकर

पथानी सामंता.. 71
सत्यनारायण प्रधान

इस पत्रिका में दिये गये लेखकों के विचार से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक की कलम से...

प्रिय मान्यवर,

माझगांव डॉक शिपबिल्डर्स लिमिटेड की राजभाषा पत्रिका "जलतरंग" का 10वां अंक देश के महान वैज्ञानिकों के योगदान को महिमा मंडित करने का प्रयास है। वैज्ञानिकों ने अलग-अलग क्षेत्रों में नये प्रयोग किये तथा देश और दुनिया के विकास में अपना सर्वोत्तम योगदान देकर समाज के विकास में सहयोग किया है।

स्वतंत्रता पश्चात देश में अन्न की कमी को दूर करने के लिए हरित क्रांति के माध्यम से अन्न की पैदावार बढ़ाई गई और वैज्ञानिकों के प्रयास और त्याग से देश की अनेक समस्याओं का निराकरण हुआ है। भारतीय वैज्ञानिकों ने देश के अलावा सम्पूर्ण मानवता के लिए कार्य किया है जिसका लाभ वैश्विक स्तर पर मिल रहा है।

विज्ञान का मूल आधार गणित है। बिना गणना के आगे की प्रक्रिया संचालित नहीं हो सकती है। भारतीय विद्वानों ने ही गणित के अंकों की खोज के साथ शून्य की खोज सबसे पहले की थी।

ईसा से लगभग 500 वर्ष पहले भारत ने ज्योतिष शास्त्र, गणित तथा खगोल विद्या में विशेष प्रगति किया था। उस दौर में विश्व के अन्य हिस्सों में इसके बारे में कोई जागरूकता नहीं थी।

वैज्ञानिकों के अहम योगदान को लोगों में प्रचारित करने के लिए पत्रिका में यथोचित सम्मान दिया गया है। देश के नौजवानों से अपेक्षा की जाती है कि विकास के प्रत्येक क्षेत्र में नये प्रयोग करें। ऐसे महत्वपूर्ण विषय पर राजभाषा अनुभाग द्वारा पत्रिका प्रकाशित करना एक सराहनीय कार्य है।

आशा है कि राजभाषा अनुभाग द्वारा प्रकाशित पत्रिका "जलतरंग" वैज्ञानिकों के महत्वपूर्ण उपलब्धियों को पाठकों तक पहुँचाने में सफल होगी।

शुभ कामनाओं सहित...

कमोडोर राकेश आनन्द, भानौ (नि.)
अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक

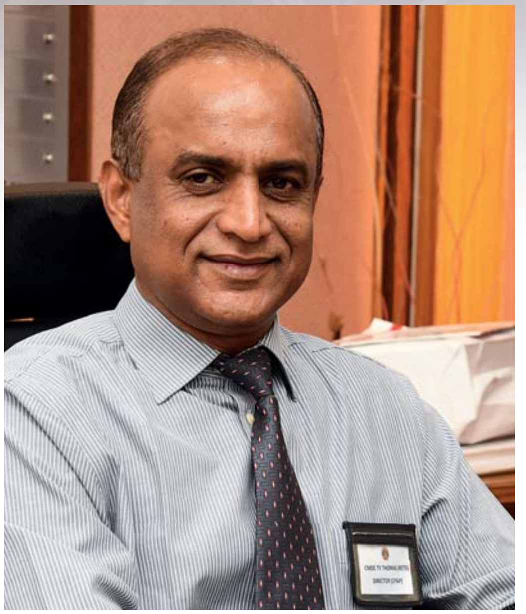

निदेशक (समवाय योजना एवं कार्मिक) का संदेश

"जलतरंग" का 10वां अंक भारत के महान वैज्ञानिकों के जीवन तथा उपलब्धियों पर केन्द्रित है। कम्पनी की पत्रिका पिछले 5 वर्षों से अपनी उपयोगिता और महत्ता साबित कर रही है।

माझगांव डॉक देश के महत्वपूर्ण समुद्री नौसेना सुरक्षा से सम्बन्धित युद्धपोत तथा पनडुब्बी निर्माण करने वाला संस्थान है। इन उत्पादों का सम्बंध विज्ञान, तकनीकी, गणित, सांख्यिकी और भूगोल से है। यदि वैज्ञानिकों का योगदान विभिन्न क्षेत्रों में नहीं होता तो आज की आधुनिक सुविधायें मानव जीवन में प्राप्त नहीं हो सकती थीं। देश में सर्वांगीण विकास में प्रत्येक नागरिक की हिस्सेदारी है लेकिन विशिष्ट मेधा और कर्मशील लोगों का योगदान सामान्य जनों से अधिक है। ऐसे सामान्य से विशिष्ट बने चिंतकों, वैज्ञानिकों के योगदान को पत्रिका में समाहित कर पाठक के ज्ञान में वृद्धि करना पत्रिका का लक्ष्य है।

मैं पत्रिका की सफलता की कामना करता हूँ।

कमोडोर टी वी थॉमस भानौ (नि.)
निदेशक (समवाय योजना एवं कार्मिक)

महाप्रबंधक (मानव संसाधन) का संदेश

पत्रिका किसी भी संस्थान के क्रिया-कलाप, उत्पादन एवं लक्ष्य का दर्पण होती है। इसके माध्यम से संस्थान में घटित एवं क्रियान्वित सभी गतिविधियों का वर्णन किया जाता है। माझगांव डॉक शिपबिल्डर्स लिमिटेड सामरिक इकाई है। यह अपने उत्पादों पर केन्द्रित एक अर्धवार्षिक पत्रिका प्रकाशित करता है और दूसरा अंक विषय वस्तु पर आधारित होता है।

"जलतरंग" पत्रिका का 10वां अंक देश के महान वैज्ञानिकों को समर्पित है जिनके असाधारण योगदान से देश और दुनिया को समाज के प्रत्येक क्षेत्र में विकास का मार्ग प्रशस्त किया है। गणित, सांख्यिकी, खगोल विद्या-भूगोल, जैव उत्पत्ति तथा वनस्पतियों के बारे में गहनरूप से अध्ययन, चिंतन, प्रयोग कर, नई खोज किया जो मानव मात्र के लिए उपयोगी सिद्ध हुआ है।

इसवी सन् आरम्भ होने से हजारों वर्ष पहले भारत में अनेक विद्वान और वैज्ञानिक विचारक पैदा हुए थे जिसके कारण इस महाद्वीप के भूभाग में सामाजिक सभ्यता का विकास तथा निवास की आधुनिक कला विकसित हुई थी।

ऐतिहासिक वैज्ञानिकों से संबंधित विषयों पर पत्रिका प्रकाशन कर राजभाषा अनुभाग ने महत्वपूर्ण कार्य ज्ञान विस्तारण के क्षेत्र में किया है। पत्रिका पढ़ने पर अवश्य ही भारतीय वैज्ञानिकों की याद तरो-ताजा होगी।

शुभकामनाओं सहित।

संतोष कुमार मल्लिक
महाप्रबंधक/विभाग प्रमुख (मानव संसाधन)

सम्पादक की कलम से...

"जलतरंग" का विषय वस्तु आधारित 10वां अंक प्रकाशित करने पर हर्ष की अनुभूति हो रही है। यह अंक विशेष रूप से भारतीय वैज्ञानिकों के अदम्य साहस, दूरदर्शिता तथा जीवन की विषम परिस्थितियों का सामना करते हुए अपने लक्ष्य के प्राप्ति की गाथा है। देश के सभी परिवार स्वतंत्रता से पहले सुविधा सम्पन्न नहीं थे लेकिन गरीबी का मुकाबला साहस से करते हुए अपने सम्मान की रक्षा वैज्ञानिकों ने किया है। देश का मान-सम्मान विश्व में बढ़ाया है।

किसी भी देश की आत्मा उसके नागरिकों में बसती है। यदि नागरिक जागरूक, स्वामिभक्त, न्यायशील, सदाचारी और देशभक्त के साथ मानवतावादी दृष्टिकोण रखें तो सम्बन्धित देश का सर्वांगीण विकास निरंतर जारी रहता है।

"जलतरंग" राजभाषा पत्रिका का लक्ष्य अपने कर्मचारियों की मनोभावनाओं को व्यक्त करने के लिए मंच प्रदान करना है। कम्पनी के सभी कर्मचारी तथा कामगार अपनी सृजनशीलता का परिचय इसके माध्यम से प्रस्तुत करते हैं।

भाषा का लक्ष्य अभिव्यक्ति है। सशक्त माध्यम से अपनी बात दूसरों तक पहुँचाने का कार्य भाषा के माध्यम से ही सम्भव है। कम्पनी उत्पादों के अलावा अन्य साहित्यिक सांस्कृतिक कार्यों का विवरण पत्रिका के माध्यम से सभी कर्मचारियों तक प्रचारित किया जाता है। पाठकों के सुझावों को शिरोधार्य करते हुए पत्रिका की गुणवत्ता में सुधार करने का प्रयास जारी रहेगा। सुधी जन अपने सुझावों से अवगत करायें।

रामप्रीत यादव
सहायक प्रबंधक (राजभाषा)

आर्यभट्ट

पी डी सिद्दीकी
सहायक प्रबन्धक (राभा)

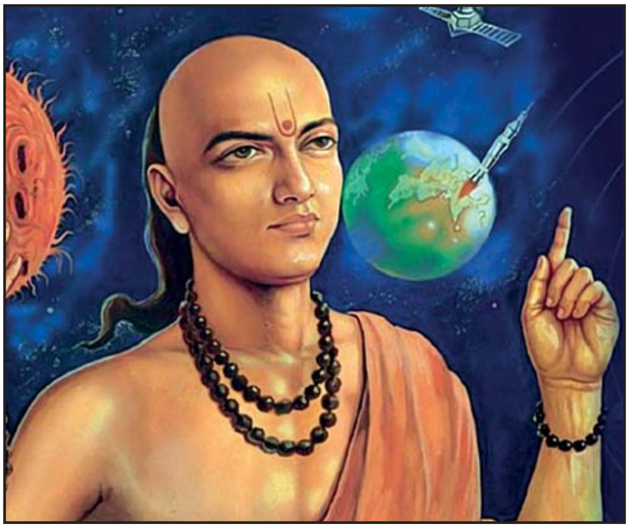

प्राचीन काल में भारतीय गणित और ज्योतिषशास्त्र अत्यंत उन्नत था। इस वैज्ञानिक उन्नति में न सिर्फ योगदान करने वाले बल्कि उसमें चार चाँद लगाने वाले महान गणितज्ञ आर्यभट्ट का जन्म अनुमानों के अनुसार गुप्त-काल में हुआ था।

उनके माता-पिता का नाम, वंश-परिचय आदि के बारे प्रामाणिक जानकारी नहीं है। उनके श्लोकों के अनुसार, वह बिहार राज्य की वर्तमान राजधानी पटना, जो पहले पाटलीपुत्र के नाम से मशहूर थी, इसके समीप कुसुमपुर नामक स्थान के रहने वाले थे।

उनकी जन्मतिथि भी अनुमानों के आधार पर 13 अप्रैल 476 मानी जाती है और प्रसिद्ध अंतरराष्ट्रीय संस्था यूनेस्को ने इसी आधार पर उनकी पंद्रह सौवीं जन्मतिथि मनाई थी।

उस समय मगध विश्वविद्यालय विद्या का एक प्रमुख केंद्र था। यहाँ पर खगोलशास्त्र के अध्ययन के लिए एक अलग विभाग था।

उस समय बौद्ध धर्म काफी छाया हुआ था। जैन धर्म का भी काफी प्रचलन था, पर आर्यभट्ट के श्लोकों से लगता है कि वह इन दोनों में से किसी के मानने वाले नहीं थे। प्राचीन कृतियों के रचनाकारों की तरह वह अपने श्लोकों में प्रारंभ में अपने इष्टदेव की स्तुति करते हैं और मानते हैं कि ब्रह्मा के वरदान से ही उन्होंने तमाम ज्ञान आदि प्राप्त किया है।

हालाँकि भारत में खगोलशास्त्र का जन्म आर्यभट्ट से सदियों पूर्व हो चुका था। यहाँ पर पंचांग के नियम और नक्षत्र-विभाजन आदि ईसा के जन्म से तेरह-चौदह शताब्दी पूर्व ही बनाए जा चुके थे। वेदों में भी खगोलविद्या का विवरण मिलता है।

आर्यभट्ट के समय खगोलशास्त्र की स्थिति बिगड़ चुकी थी। उस समय प्रचलित पितामह सिद्धांत, सौर सिद्धांत, वासिष्ठ सिद्धांत, रोमक सिद्धांत और पौलिष सिद्धांत थे। ये पाँचो पुराने हो चुके थे। उनसे न तो गणित के ठोस परिणाम प्राप्त होते थे और न ही वे उपयोगी थे। उस समय उपलब्ध गणित के आधार पर जो ग्रहों की स्थिति, ग्रहण आदि के समय का ज्ञान होता था, उसमें और प्रत्यक्ष स्थिति में भारी अंतर होता था। इससे लोगों का विश्वास भारतीय ज्योतिष से उठने लगा था। आर्यभट्ट ने उनमें मौजूद त्रुटियों को दूर करके उसे नवीन और प्रभावी रूप से प्रस्तुत किया।

प्राप्त जानकारी के अनुसार, गुप्तकाल के इस गणितज्ञ और खगोलशास्त्री ने तीन ग्रंथ लिखे थे, 'दशगीतिका', 'आर्यभट्टीयम' तथा 'तंत्र'।

अपने प्रमुख ग्रंथ आर्यभट्टीयम या आर्यसिद्धांत में उन्होंने अपने जन्म स्थान कुसुमपुर का भी वर्णन किया है। आगे उन्होंने ज्योतिषशास्त्र के मूल सिद्धांतों का संक्षेप में वर्णन किया है। ज्योतिषशास्त्र का प्रामाणिक ग्रंथ माने जाने वाले ग्रंथ में 121 श्लोक हैं जो चार खंडों

में विभाजित किए गए हैं–गीत-पादिका, गणितपाद, कालक्रियापाद तथा गोलपाद।

इस ग्रंथ के आरंभ में उन्होंने परब्रह्म परमेश्वर की वंदना की है और अंत में भी उन्होंने स्वयंप्रभू की स्तुति की है। अनुमान है कि इस अद्‌भुत ज्ञान को पाने के लिए आर्यभट्ट ने घोर तपस्या की होगी।

आर्यभट्ट ने अपने माता-पिता, गुरु आदि के बारे में कुछ भी नहीं लिखा। वह भी उसी सिद्धांत को मानते थे कि रचना महान होती है, रचनाकार नहीं।

अपने ग्रंथ के पहले भाग अर्थात् गीतपादिका में युगों का प्रमाण, ग्रह आदि का परिभ्रमण-काल अर्थात् ग्रहों की गति का काल, राशि का भेद, आकाश-कक्षीय (पथ) प्रमाण, आदि को उन्होंने सूत्रबद्ध किया।

दूसरे हिस्से गणितपाद में उन्होंने गणित के वर्गमूल, घनमूल, त्रिकोणादि क्षेत्रफल, ज्या अंतर, अनिर्दिष्ट समीकरण आदि का वर्णन किया है। उन्होंने इकाई (1), सैकड़ा (100), दस हजार (10,000), आदि को वर्ग-स्थान बताया है क्योंकि इनका वर्गमूल सीधा पूर्ण अंकों में निकाला जा सकता है। उन्होंने 10, 1000, एक लाख आदि को अवर्ग माना है, क्योंकि उनका वर्गमूल दशमलव में निकलता है।

आर्यभट्ट एक अद्भुत गणितज्ञ थे। उन्होंने अपने ज्योतिषविज्ञान में अंकगणित और रेखागणित का भी समावेश किया। उन्होंने अनेक कठिन प्रश्नों के उत्तर का मात्र 30 श्लोकों में समावेश किया। उनके एक ही श्लोक में गणित के 5 नियम समा गए।

उन्होंने अपने एक श्लोक में दशमलव पद्धति का उल्लेख किया तथा बाद में वर्ग का क्षेत्रफल, त्रिभुज का क्षेत्रफल, शंकु का घनफल, वृत्त का क्षेत्रफल तथा अन्य प्रकार के क्षेत्रों का क्षेत्रफल निकालने के नियमों का वर्णन किया। उन्होंने यह भी लिखा कि परिधि के छठे भाग की ज्या त्रिज्या के बराबर होती है। एक अन्य श्लोक में उन्होंने लिखा कि अगर वृत्त का व्यास 20,000 है तो परिधि 62,832 होगी। आधुनिक गणित के अनुसार, यह दशमलव के चौथे स्थान तक शुद्ध है। पाई (π) का मान उन्होंने 3.1416 निकाला। उनके श्लोकों के आधार पर वृत्त, त्रिभुज तथा चतुर्भुज आदि बनाने की विधि, दीपक से बनी छाया निकालने की विधि, दीपक की ऊँचाई और दूरी जानने की विधि के बारे में ज्ञान हासिल किया जा सकता है।

आर्यभट्ट ने बीजगणित के बारे में भी बहुमूल्य जानकारी संसार को दी। साधारण नियम (अ + ब)^2 - (अ^2 + ब^2) = 2 अ ड़ ब का तरीका समझाया गया। इसी प्रकार दो राशियों का गुणनफल जैसे अ ड़ ब तथा अंतर अ - ब ज्ञात करके राशियों को अलग-अलग पहचानने, भिन्नों के हरों को सामान्य हरों में परिवर्तित करने तथा भिन्नों को गुणा करने, भाग करने आदि के तरीके समझाए गए हैं। विशिष्ट बात यह है कि जिन तरीकों पर आज पूरा ग्रंथ लिखा जाता है, उनको उन्होंने अपने 30 श्लोकों में समाविष्ट कर दिया है।

आर्यभट्ट त्रिकोणमिति के भी आचार्य थे। उन्होंने सर्वप्रथम ज्या (Sine) का प्रयोग किया था। उन्होंने ज्या और उत्क्रम ज्या की सारणी बनाने के नियमों का भी उल्लेख किया। उनके नियमों से ज्या का जो सैद्धांतिक मूल्य प्राप्त होता था, वास्तविक मूल्य से थोड़ा भिन्न था। आर्यभट्ट को इसका ज्ञान था और उन्होंने अपनी सारणी में संशोधन करके वास्तविक मूल्य ही दिया था।

उनके ग्रंथ के अन्य खंड कालक्रियापाद में काल के विभिन्न भाग, ग्रहों का परिभ्रमण, मास-संवत्सर, अधिकमास, क्षय तिथियाँ, ग्रंथ-रचना का काल, ग्रहों की गतियाँ, वार (सप्ताह) की कल्पना इत्यादि का विवरण है।

इसी प्रकार अन्य खंड गोलपाद में खगोल विज्ञान की जानकारी है। सूर्य, चंद्र, राहु, केतु आदि ग्रहों की दृश्यादृश्य परिस्थिति, भूमि की आकृति, दिन-रात के कारण देशांतरों में सूर्योदय, राशियों का उदय, ग्रहणों इत्यादि का विवरण 50 श्लोकों में है।

इस प्रकार आर्यभट्टीयम एक अत्यंत ही दिलचस्प ग्रंथ है। आधुनिक वैज्ञानिक इसे पढ़कर दाँतो-तले उँगली दबा लेते हैं कि किस प्रकार आर्यभट्ट ने पाई का मूल्य, वृत्त का क्षेत्रफल आदि निकालने का तरीका निकाला होगा।

उनके समय देश में अनेक अंधविश्वास प्रचलित थे और उन सबको तोड़ते हुए आर्यभट्ट ने दुनिया को बताया था कि पृथ्वी, ग्रह, चंद्र आदि में स्वयं प्रकाश नहीं है, बल्कि ये सूर्य से प्रकाश लेकर प्रकाशित होते हैं। पृथ्वी के जिस हिस्से पर प्रकाश पड़ता है वह प्रकाशित होता है और शेष अंधकार में रहता है। उन्होंने यह भी बताया कि पृथ्वी गोल है और अपनी धुरी पर चक्कर लगाते हुए सूर्य का चक्कर लगाती है। उन्होंने पृथ्वी की तुलना कदंब वृक्ष के पुष्पगुच्छ से की जो हरा-भरा होता है।

उन्होंने लिखा है कि जिस प्रकार नाव में यात्रा करने वाला व्यक्ति किनारे पर स्थित पेड़, पौधों, चट्टानों को विपरीत दिशा में जाते हुए देखता है, उसी प्रकार ये नक्षत्र भी हमें चलते हुए दिखाई देते हैं। उन्होंने पृथ्वी को केंद्र मानने वाली मान्यता को तोड़ दिया था।

उन्होंने राहु-केतु के कारण चंद्रग्रहण, सूर्यग्रहण होने की मान्यता को भी तोड़ा और बताया कि चंद्रमा की परछाईं के कारण सूर्यग्रहण और पृथ्वी की परछाईं के कारण चंद्रग्रहण होता है।

आर्यभट्ट ने शून्य तथा दशमलव का लगातार प्रयोग करके भारत के प्राचीन गणितज्ञान का गौरव बढ़ाया। अरबी विद्वान भी आर्यभट्ट का आदर करते थे और उन्हें अरजभट के नाम से पुकारते थे।

दिन और रात का विभाजन करने के बाद आर्यभट्ट ने काल का भी बड़ी कुशलता से विभाजन किया है। उनसे पूर्व मनुस्मृति में काल का विभाजन इस प्रकार किया गया था :

1 कल्प = 1 मन्वंतर + 6 महायुग = 1000 महायुग

1 मन्वंतर = 71 महायुग

एक महायुग = 43,20,000 वर्ष

एक महायुग में चार युग–सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग होते हैं। सतयुग में 17,28,000 वर्ष, त्रेता में 12,96,000 वर्ष, द्वापर में 8,64,000 तथा कलियुग में 4,32,000 वर्ष होते हैं।

आर्यभट्ट ने इस विभाजन को और सरल कर दिया। उनके अनुसार:

1 कल्प = 14 मन्वंतर, अर्थात् 10008 महायुग

1 मन्वंतर = 72 महायुग

एक महायुग = 43,20,000 वर्ष।

महायुगों को चार युगों में विभाजित करके आर्यभट्ट ने उन्हें समान बताया है। हर युग में 10,80,000 वर्ष होते हैं।

आर्यभट्ट की कल्पनाशीलता गजब की थी। सूर्य से विभिन्न ग्रह किस प्रकार प्रकाशित होते हैं, जहाँ सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँच पाता वहाँ छाया किस तरह पड़ती है आदि का वर्णन उन्होंने दीपक और गेंद के माध्यम से समझाया था।

उनके अनुसार, छाया की लंबाई दीपक और गेंद के बीच की दूरी पर निर्भर करती है। यदि इस बीच में कोई दूसरी वस्तु अर्थात् ग्रह, उपग्रह आदि आ जाता है तो उसकी छाया ग्रहण का रूप धारण कर लेती है। आर्यभट्ट ने न सिर्फ छाया का सिद्धांत प्रतिपादित किया वरन् भविष्य में सूर्य और चंद्रग्रहण कब-कब पड़ेंगे, इसकी गणना का सूत्र भी बताया और यह सूत्र आज भी प्रचलित है और कभी ग्रहण की भविष्यवाणी गलत नहीं हुई।

आर्यभट्ट ने गणितपाद में एक नियम से बँधी हुई संख्याओं की श्रेणी 1, 2, 3, 4, 5... का योग निकालने का भी सूत्र बताया। वह एक से अधिक श्रेणियों के भी कुल योग के सूत्र के प्रतिपादक थे।

आर्यभट्ट से पहले बीजगणित का चलन नहीं था। इसके अलावा एक विशेष बात यह थी कि आर्यभट्ट के श्लोक में वर्णित सूत्रों को हर समय याद रखने के लिए भी आर्यभट्ट ने अपनी ही एक परिभाषा विकसित की थी। उन्होंने ह्रस्वाक्षर (जो उच्चारण में कम समय लेते हैं) जैसे अ, इ, उ, और दीर्घाक्षर (जो अधिक समय लेते हैं) जैसे आ, ई, ऊ आदि को संकेतों के रूप में प्रकट किया था। वह बड़ी संख्याओं के लिए इनका प्रयोग करते थे। उदाहरण के तौर पर रव्यु-3,20,000, ऋ – 10,00,000, योही – 5,77,53,336 आदि।

आज हम देखते हैं कि कंप्यूटर के कीबोर्ड में अंकित हर अक्षर के पीछे कोई न कोई क्रिया छुपी होती है। इसी प्रकार का प्रयोग आर्यभट्ट ने भी किया था।

आर्यभट्ट न सिर्फ अंकों के खेल में माहिर थे वरन् मूल से ब्याज निकालने के सूत्र भी उन्होंने प्रतिपादित किए। उन्होंने साधारण ब्याज की गणना तथा चक्रवृद्धि ब्याज की गणना के लिए अलग-अलग तरीके बताए।

आर्यभट्ट की मृत्यु कब हुई, यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। पर कुछ लोग उनकी मृत्यु का काल 520 ईसवी और कुछ लोग 550 ईसवी बताते हैं।

आर्यभट्ट दुनिया से चले गए पर उनका ज्ञान धरोहर के रूप में बना रहा। बाद के काल में विद्वानों ने उनकी रचनाओं पर अध्ययन और शोध किया। जहाँ वाराहमिहिर (ई. सन् 587), ब्रह्मगुप्त (ई. सन्

628) ने अपनी रचनाओं में उनका आदरपूर्वक उल्लेख किया, वहीं सोमेश्वर सूर्यदेव (ई. सन् 1191), मलया (ई. सन् 1450), कृष्णदास (ई. सन् 1756) आदि ने सदियों बाद भी उनके ग्रंथों का अध्ययन करके उन पर टीका लिखी।

सन् 950 के आसपास आर्यभट्ट नामक एक और विद्वान ने जन्म लिया था जो ज्योतिष के प्रकांड विद्वान थे। उन्होंने महासिद्धांत नामक ग्रंथ की रचना की थी, अतः कई लोग आदि आर्यभट्ट या आर्यभट्ट प्रथम के नाम से भी उन्हें पुकारते हैं।

आर्यभट्ट न सिर्फ भारत के वरन् पूरे विश्व के प्रमुख वैज्ञानिकों में से एक गिने जाते हैं। शिकागो से निकली प्रमुख वैज्ञानिकों की सूची में भी उनका नाम है।

भारत सरकार ने उनके सम्मान में अपने पहले अंतरिक्ष उपग्रह का नाम आर्यभट्ट रखा था जो 19 अप्रैल 1974 को छोड़ा गया था।

आर्यभट्ट के ग्रंथ आर्यभट्टीयम को सोलहवीं सदी तक गुरुकुलों में पढ़ाया जाता था। उनके अनुयायी अपने को उनके पंथ का सदस्य मानते थे।

भारत के पहले उपग्रह आर्यभट्ट का सफल प्रक्षेपण

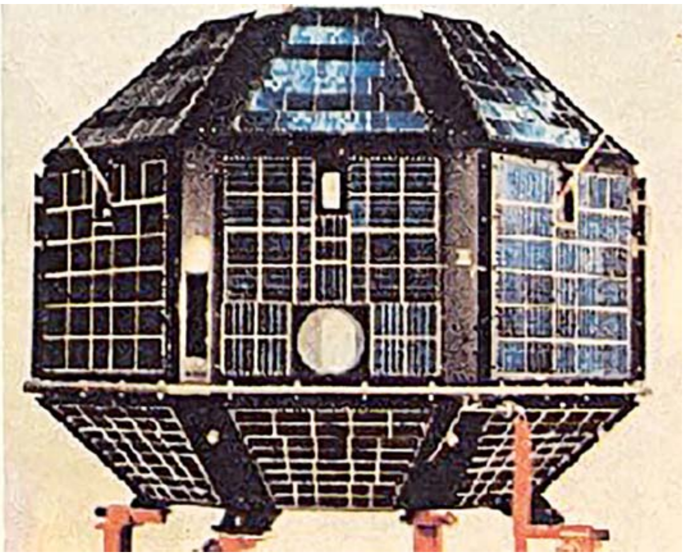

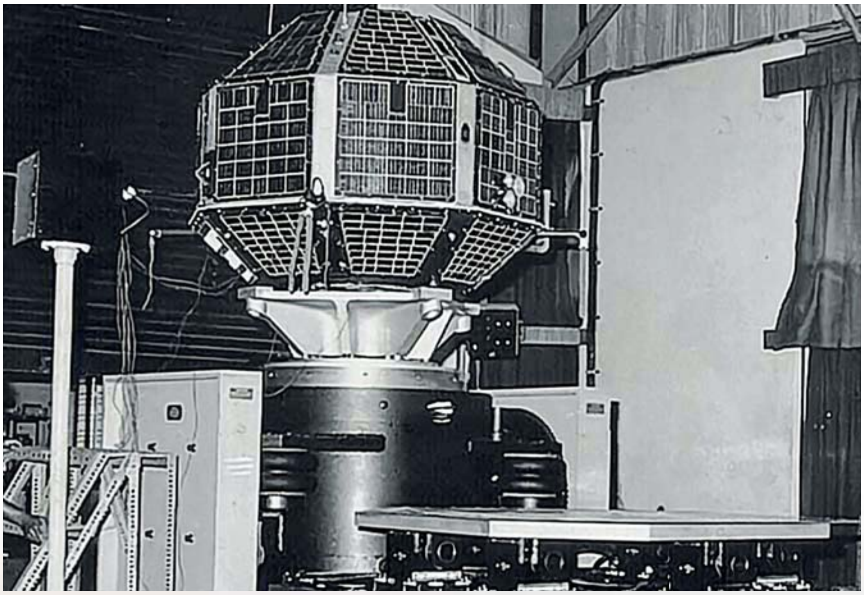

डॉ. एम. एस. स्वामीनाथन

अशोक शेल्हालकर

कृषि क्षेत्र में भारत को आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान करने वाले डॉ. एम. एस. स्वामीनाथन का जन्म 7 अगस्त 1925 को तमिलनाडु राज्य के कुंभकोणम इलाके में हुआ था। उनके पिता डॉक्टर थे और परिवार मध्यवर्गीय था। जब उनकी आयु मात्र 10 वर्ष थी तभी उनके पिता का देहांत हो गया। इस आघात के बावजूद स्वामीनाथन ने अपनी पढ़ाई जारी रखी और 1944 में त्रावणकोर विश्वविद्यालय से बी.एस.सी. की डिग्री हासिल की। उनकी रुचि प्रारंभ से ही कृषि में थी और 1947 में उन्होंने कोयंबटूर कृषि कॉलेज से कृषि में भी बी.एस.सी. की डिग्री हासिल किया।

1949 में स्वामीनाथन को भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के जेनेटिक्स व प्लांट ब्रीडिंग विभाग में असोसियेटशिप मिल गई। अपने बेहतरीन कार्य से उन्होंने सभी को प्रभावित किया और 1952 में उन्हें कैंब्रिज स्थित कृषि स्कूल से पी.एच.डी. भी मिल गई। उनका शोध विषय था - आलू।

मेधावी और परिश्रमी स्वामीनाथन पढ़ाई के साथ-साथ काम भी करते रहे। उन्हेंाने नीदरलैंड के एक विश्वविद्यालय में जेनिटिक्स विभाग में यूनेस्को फेलो के रूप में भी 1949-50 के दौरान काम किया। 1952-53 में उन्होंने अमेरिका स्थित विस्कोसिंग विश्वविद्यालय के जेनिटिक्स विभाग में रिसर्च एसोसियेट्स के रूप में काम किया।

विभिन्न जगहों पर छोटी-छोटी नौकरी करने के बाद अब स्वामीनाथन परेशान हो चुके थे। अब वह ऐसी नौकरी चाहते थे कि जिसमें रहकर वह अपना पूरा ध्यान शोधकार्य में लगा सकते। उस समय आलू पर शोध कार्य करने वाली संस्थाओं में रिक्त पद नहीं था। अतः स्वामीनाथन ने एक अंतर्राष्ट्रीय संस्थान में चावल पर शोध प्रारंभ किया। उन्होंने चावल की जापानी और भारतीय किस्मों पर शोधकार्य किया।

1956 में स्वामीनाथन के जीवन में परिवर्तन आया और उन्हें पूसा स्थित संस्थान में नौकरी मिल गयी। यहां उन्हें गेहूं पर शोध कार्य का दायित्व सौंपा गया। साथ में उन्होंने चावल पर अपना काम जारी रखा। यहां के वनस्पति विभाग में उन्होंने किरणों के विकिरण की सहायता से काम प्रारंभ किया और गेहूं की अनेक किस्में विकसित कर डाली। अनेक वैज्ञानिक पहले आशंका व्यक्त कर रहे थे कि एटमी किरणों के सहारे गेहूं पर शोधकार्य नहीं हो सकता है, पर स्वामीनाथन ने उन्हें गलत साबित कर दिया। 1970 में सरदार पटेल विश्वविद्यालय ने उन्हें डी.एस.सी. की उपाधि प्रदान की।

1969 में डॉ. स्वामीनाथन इंडियन नेशनल साइंस अकादमी के सचिव बनाए गए। वह इंडियन अकादमी ऑफ साइंस के फेलो मेंबर भी बने। इससे पूर्व 1963 में हेग में हुई अंतर्राष्ट्रीय कांफ्रेंस के उपाध्यक्ष भी बनाए गए थे।

1954 से 1972 तक डॉ. स्वामीनाथन ने कटक और पूसा स्थित कृषि संस्थानों में अद्वितीय कार्य किया। इस दौरान उन्होंने

शोधकार्य और शिक्षण कार्य भी किया। प्रशासनिक दायित्वों को भी बखूबी निभाया।

अपने कार्यों से उन्होंने सभी को प्रभावित किया और 1972 में उन्हें भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् का महानिदेशक नियुक्त किया गया। साथ में उन्हें भारत सरकार में सचिव भी नियुक्त किया गया।

कृषि प्रधान देश भारत उससे पहले अपने देशवासियों के खाने लायक पर्याप्त अनाज पैदा नहीं कर पाता था। लोगों को मुख्यतः चावल और गेहूं की आवश्यकता थी। हमारे वैज्ञानिक गेहूं की पैदावार बढ़ाने में असफल रहे थे।

1962 में सर्वप्रथम रॉकफेलर फाउंडेशन से पूसा कृषि संस्थान में गेहूं की बौनी किस्म मंगाई गई। डॉ. एन.ई. बोरलॉग, जिनको गेहूं की बौनी किस्म विकसित करने के लिए 1968 में नोबल पुरस्कार मिला था, उनकी भी सेवाएं ली। डॉ. बोरलॉग भारत आए और अपना ज्ञान डॉ. स्वामीनाथन और उनके साथियों को सौंपा।

डॉ. स्वामीनाथन इस कार्य में जुट गए। जब उनकी सफलता का समाचार डॉ. बोरलॉग को दोबारा मिला तो वह 1971 में फिर भारत आए और प्रगति देखकर अत्यंत प्रसन्न हुए।

1965 से 1971 तक डॉ. स्वामीनाथन पूसा संस्थान के निदेशक थे। गेहूं की बौनी किस्म पर उत्कृष्ट कार्य हुआ। डॉ. स्वामीनाथन ने इस विषय पर बहुमूल्य लेख भी लिखे, जिनसे उनकी तथा संस्थान की ख्याति पूरे विश्व में बढ़ती गई। जब बौनी किस्म के संशोधित गेहूं के बीज उत्तर प्रदेश, पंजाब और राजस्थान, मध्य प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र और दिल्ली के किसानों में बांटे गए तो अच्छी पैदावार हुई।

1967-68 में इस बात पर जोर दिया गया कि योजना का दायरा एक ही फसल तक सीमित न रखा जाए वरन एक ही खेत में एक के बाद दूसरी अर्थात् एक साल में एक से अधिक फसलें उगाकर पैदावार और बढ़ाई जाय। इसके लिए एक ओर अधिक उपज देने वाली बीजों का प्रयोग बढ़ाया। वहीं दूसरी और खेती करने के नए तरीकों का प्रयोग और पानी की अच्छी व्यवस्था भी की गई। दोगला बाजरा, दोगली मकई, ज्वार, चावल और गेहूं की नई नस्लों का विकास किया गया। गर्मी के लिए मूंग, लोबिया की फसलों की तैयारी की गई।

स्वामीनाथन के नेतृत्व में दिल्ली में कई गांव विकसित किए गए, जहां किसान सिर्फ बीज की पैदावार करते थे। इन किसानों को विशेष प्रशिक्षण दिया गया।

डॉ. स्वामीनाथन ने हर प्रकार के अनाज पर शोध को बढ़ावा दिया। उन्होंने अलसी की नई किस्म अरुणा को जन्म दिया। यह किस्म चार महीने में पक कर तैयार हो जाती है। आंध्र प्रदेश के तेलंगाना इलाके में पहले अलसी की एक ही फसल उगाई जाती थी। अब दो फसलें उगाई जाती हैं।

उन्होंने ज्वार की दोगली फसल और कपास की सुजाता किस्म का विकास भी किया। उनके नेतृत्व में जौ की नई किस्म विकसित की गई जिससे शरबत आदि बनाए जाते हैं। इसके अलावा उन्होंने पटसन् की दो किस्में विकसित करने में योगदान किया।

अपने काम के सिलसिले में वह गांव-गांव गए और किसानों से मिले। कुछ चुने हुए जिलों में किसानों को बीज, पानी, खाद आदि की विशेष सुविधा दी गई। अन्य वैज्ञानिक भी बीच-बीच में जाते रहे। किसानों में नई उमंग का प्रसार हुआ और परिणाम अच्छे रहे।

डॉ. स्वामीनाथन ने वैज्ञानिकों द्वारा किए गए कार्य को ग्रामीण जनता तक पहुंचाने के लिए हर प्रकार के उपाय किए। एक ओर रेडियो अखबार के जरिए जानकारी किसानों तक पहुंचाई गई, वहीं दूसरी ओर स्कूली बच्चों को अवगत कराया गया ताकि आने वाले समय में प्रगति की रफ्तार और बढ़े।

उन्होंने इंडियन नेशनल साइंस अकादमी का चंडीगढ़ में अधिवेशन किया तथा अन्य तरीकों से भारत की प्रगति को भारत के बाहर भी पहुंचाया। साइंस अकादमी ने डॉ. स्वामीनाथन को सिल्वर जुबली अवॉर्ड से सम्मानित किया। इस अवसर पर देश-विदेश के 15 हजार वैज्ञानिक और विद्वानों ने भाग लिया था। इस समारोह का उद्घाटन तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने किया था।

डॉ. स्वामीनाथन के नेतृत्व में कृषि के क्षेत्र में हुए क्रांतिकारी अनुसंधान ने देश को अनाज के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता प्रदान किया। इस क्रांति को हरित क्रांति की संज्ञा दी गई। तत्कालीन प्रधानमंत्री ने इस पर डाक टिकट भी जारी किया।

अप्रैल 1979 में डॉ. स्वामीनाथन को योजना आयोग का सदस्य बनाया गया। डॉ. स्वामीनाथन आयोग को कृषि और गांवों के संबंध में अपनी सलाह देते रहे। वह 1982 तक योजना आयोग में रहे और अप्रैल से जून 1980 तक योजना आयोग के कार्यवाहक उपाध्यक्ष भी रहे। यहां पर भी उनका कार्य काफी सराहा गया।

समय के साथ डॉ. स्वामीनाथन ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर की ख्याति अर्जित कर ली। 1983 में वह अंतर्राष्ट्रीय चावल शोध संस्थान मनीला के महानिदेशक बनाए गए और उन्होंने 1988 तक यहां कार्य किया। इस दौरान उन्होंने चावल पर अभूतपूर्व शोध किया और उन्नत किस्म का चावल विकसित करने में सफल रहे।

डॉ. स्वामीनाथन एक अत्यंत मेहनतकश वैज्ञानिक हैं। सुबह पांच बजे उठकर देर रात तक काम करते रहते हैं। वह कुशल शिक्षक, विद्वान, शोधकर्ता और अनुभवी प्रशासक हैं। वह ऑफिस, खेत, क्लासरूम, कांफ्रेंस रूम हर जगह मेहनत करते रहे और सफल होते रहे। उनकी पत्नी जानी-मानी समाजसेवी हैं और नेहरू प्रयोग केंद्र चलाती हैं, जो होनहार लड़कों-लड़कियों को पढ़ाने की काम करती हैं।

डॉ. स्वामीनाथन को संगीत अत्यंत प्रिय है। दक्षिण भारतीय संगीतज्ञ त्यागराज से उन्हें बहुत लगाव है क्योंकि उनके गीतों से जीवन जीने की सीख मिलती है। त्यागराज के एक गीत में संदेश दिया गया है कि ईश्वर तक पहुंचने के लिए मुख्य मार्ग का ही इस्तेमाल करना चाहिए। गलियों और पगडंडियों का सहरा लेने से हम भटक सकते हैं। स्वामीनाथन के संगीत-प्रेम का उनकी तीन पुत्रियों पर भी गहरा असर पड़ा है और वे भी संगीत-प्रेमी हैं।

त्यागराज के नियम का स्वामीनाथन ने विज्ञान में भी प्रयोग किया है। यहां भी उन्होंने मुख्य मार्ग ही अपनाया तथा शॉर्टकट का सहारा नहीं लिया।

उन्हें लिखने का शौक बचपन से ही रहा। अत्यंत कम आयु में उन्होंने रुरल इंडिया नामक पत्रिका में लेख लिखा। उसके बाद उनके लेखों को शृंखला रुकी नहीं। उनके 200 से अधिक शोध पत्र-पत्रिकाओं में छप चुके हैं। भारतीय कृषि के लगभग हर पहलू को उन्होंने उजागर किया है।

लगभग 50 छात्र डॉ. स्वामीनाथन के निर्देशन में शोध करके पी. एच.डी. कर चुके हैं। 40-50 छात्रों ने एम.एस-सी. थीसिस उनके निर्देशन में तैयार की।

1970 में उन्होंने डॉ. जाकिर हुसैन मेमोरियल में लेक्चर दिया। 1971 में वह यू.जी.सी. के राष्ट्रीय प्रवक्ता नियुक्त हुए और समय-समय पर अंतर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक समारोहों में भाषण देते रहे। वह एक कुशल वक्ता माने जाते हैं। स्वीडन की सीड कमेटी के भी वह सदस्य हैं।

अपने वैज्ञानिक कृतित्व से उन्होंने बहुत सम्मान पाया। 1961 में उन्हें डॉ. शांति स्वरूप भटनागर पुरस्कार प्राप्त हुआ जिसके साथ दस हजार रुपये का नगद पुरस्कार भी था। 1965 में उन्हें चेकोस्लोवाकिया की साइंस अकादमी द्वारा सम्मानित किया गया और भारत में बीरबल साहनी पुरस्कार भी मिला। भारत सरकार ने उन्हें 1967 में पद्मश्री प्रदान किया। 1971 में उनके द्वारा समाज की खाद्यान्न समस्या के हल के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर का रमन मैग्सेसे पुरस्कार भी मिला। भारत सरकार ने उन्हें 1972 में पद्मभूषण से नवाजा और 1989 में फिर पद्मविभूषण से नवाजा।

स्वामीनाथन ने अनेक अंतराष्ट्रीय संस्थानों में भारत का न सिर्फ प्रतिनिधित्व किया वरन प्रतिष्ठित अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों के पदाधिकारी भी रहे। 1971 से 1977 तक वह अंतर्राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान के सलाहकार-मंडल में तकनीकी सलाहकार समिति के उपाध्यक्ष रहे। संयुक्त राष्ट्र द्वारा बनाई गई प्रोटीन कैलोरी सलाहकार दल के वह 1972 से 1977 तक उपाध्यक्ष रहे। 1980 से 1983 तक वह संयुक्त राष्ट्र संघ की विज्ञान और टेक्नोलॉजी की सलाहकार समिति के अध्यक्ष रहे। एफ.ए.ओ. काउंसिल के भी वह 1981 से 1985 तक अध्यक्ष रहे। उन्होंने प्रकृति और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के लिए बनाई अंतर्राष्ट्रीय संस्था के अध्यक्ष का कार्यभार भी 1984 में संभाला तथा 1985 में वर्ल्ड वाइल्ड लाइफ फंड के मानद उपाध्यक्ष का कार्यभार भी संभाला।

संसार के विभिन्न प्रतिष्ठित संस्थानों ने उन्हें तमाम उपाधियां प्रदान कीं। लंदन की प्रतिष्ठित रॉयल सोसायटी ने उन्हें फेलो नियुक्त किया। अमेरिका की राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी ने उन्हें विदेशी असोसिएट बनाया। इसी प्रकार का सम्मान उन्हें सोवियत संघ से भी मिला। 1979 में उन्हें बोरलॉग पुरस्कार तथा 1984 में राष्ट्रमंडल पुरस्कार मिले।

जहां वरिष्ठ वैज्ञानिकों डॉ. बी. पी. पाल और डॉ. एन.ई. बोरलॉग आदि ने उनकी प्रशंसा की, वहीं उनका निर्देशन पाकर अच्छा काम करने वाले वैज्ञानिकों की भी बड़ी तादाद है।

उम्र के इस पड़ाव पर भी डॉ. स्वामीनाथन सक्रिय हैं और तमिलनाडु स्थित अपने संस्थान में कार्यरत हैं।

डॉ. हरगोविन्द खुराना

सिमनलाल आर्य

प्रयोगशाला में कृत्रिम जीन्स का निर्माण कर दुनिया को चमत्कृत करने वाले डॉ. हरगोविन्द खुराना का जन्म 2 फरवरी 1922 को पंजाब प्रांत के मुल्तान जिले के रायपुर नामक स्थान में हुआ था। अब यह पाकिस्तान में है। उनके पिता पटवारी थे। उनके बचपन में ही पिता की मृत्यु हो गई थी।

हरगोविन्द खुराना ने प्रारंभिक शिक्षा रायपुर और फिर मुल्तान में पाई। पांच भाई-गहनों में सबसे छोटे हरगोविन्द बाद में मुल्तान स्थित डी.ए.वी. स्कूल में भर्ती हुए। पढ़ने में वह बहुत तेज थे और आगे ही रहना चाहते थे।

जब हाई स्कूल की परीक्षा का परिणाम निकला तो हरगोविन्द चंद अंकों से पिछड़ गए और उन्होंने दूसरा स्थान पाया। वह बहुत दुखी हुए। उनके एक शिक्षक दीनानाथ उन्हें लगातार प्रेरित करते रहते थे।

इसके बाद वह लाहौर स्थित डी.ए.वी. कॉलेज में भर्ती हुए। 1943 में उन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय से बी.एस.सी. की परीक्षा उच्च श्रेणी में पास की। 1955 में उन्हें एम.एस.सी. की डिग्री भी मिल गई। इस दौरान पंजाब विश्वविद्यालय के भौतिक-रसायनशास्त्र के प्रोफेसर बी.आर. पुरी ने उन्हें खासा प्रोत्साहित किया।

इसके बाद भारत सरकार ने उन्हें रसायनशास्त्र में आगे शोधकार्य करने के लिए छात्रवृत्ति दी और वह मैनचेस्टर विश्वविद्यालय चले गए। 1948 में उन्होंने लिवरपूल से प्रोफेसर राबर्टसन् की देखरेख में पी-एच.डी. हासिल की।

इसी बीच देश का विभाजन हो गया। उनकी मां तथा बड़े भाई विस्थापित होकर दिल्ली आ गए। स्वतंत्र भारत सरकार ने उनकी छात्रवृत्ति को एक वर्ष के लिए और बढ़ा दिया। वह विशेष अध्ययन हेतु स्विट्‌रलैंड चले गए और अपना शोध कार्य पूरा किया।

विदेश में रहकर भी उन्हें भारत से प्रेम बना रहा और भारत लौट आए। उन्होंने यहां उपयुक्त नौकरी पाने के लिए काफी प्रयास किए, पर असफल रहे। हारकर वह वापस इंग्लैंड चले गए और कैंब्रिज विश्वविद्यालय में नोबल पुरसकर विजेता अलेक्जेंडर टांड के साथ रिसर्च फेलो के रूप में काम करने लगे।

1952 में वह कनाडा गये, जहां उन्होंने एक स्विस युवती से विवाह कर लिया। उसके पिता स्विट्‌रजरलैंड के संसद सदस्य थे।

ऑर्गनिक रसायनशास्त्री डॉ. खुराना ने न्यूक्लोटाइड्‌स नामक मिश्रित जैविक पदार्थ पर काम किया। 1952 में कनाडा स्थित बैंकुवर में ब्रिटिश कोलंबिया विश्वविद्यालय के जैवरसायन विभाग में वह अध्यक्ष नियुक्त हुए। यहां वह 1960 तक काम करते रहे। 1959 में ही उन्हें डॉ. जॉन जी. मोफत के साथ मिलकर एंजाइम का निर्माण किया जिससे उन्हें अंतर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक जगत में भारी ख्याति प्राप्त हुई। यह शारीरिक क्रियाओं के लिए महत्वपूर्ण है।

1958 में उनके अद्वितीय कार्यों के लिए पुरस्कृत भी किया गया। उसी साल से वह रॉक फेलर संस्थान में अतिथि प्रोफेसर के रूप में भी काम कर रहे हैं। 1960 में उन्हें सराहनीय शोध कार्य के लिए स्वर्ण पदक भी मिला।

विस्कॉन्सिन विश्वविद्यालय में कार्य करते हुए डॉ हरगोविंद सिंह खुराना

1960 में ही डॉ. खुराना अमेरिका आ गए जहां वह विस्कोंसिन् विश्वविद्यालय में इंस्टीट्यूट ऑफ एंजाइम रिसर्च में प्राध्यापक और सहनिदेशक के रूप में कार्य करने लगे। यहां पर उन्होंने अपने सहयोगियों के साथ मिलकर रसायनशास्त्र के माध्यम से पॉली न्यूक्लोटाइड्स के निर्माण की संपूर्ण प्रक्रिया को उद्घाटिक करने में सफलता प्राप्त की। न्यूक्लोटाइड्स के मिश्रण सहित न्यूक्लिड अम्ल ने डॉ. खुराना को जीन कोड के आविष्कार में सफलता दिलाई।

उनके बनाए गए डी.एन.ए. और आर.एन.ए. से पैतृक बीमारियों का इलाज संभव हुआ। यह कार्य पूरे विश्व में प्रसिद्ध हो गया। 1968 में उन्हें शरीर विज्ञान और चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में प्रतिष्ठित नोबल पुरस्कार भी मिला। इसके साथ ही वह तीसरे भारतीय हैं, जिन्होंने नोबल पुरस्कार प्राप्त किया। विज्ञान के क्षेत्र में नोबल पुरस्कार पाने वाले वह दूसरे वैज्ञानिक थे। उस समय उनकी आयु मात्र 46 वर्ष थी।

इत्तफाक यह था कि रसायनशास्त्री डॉ. खुराना को शरीर विज्ञान और चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में नोबल पुरस्कार मिला। दरअसल सभी जीवों का निर्माण विशेष रासायनिक तत्वों के परस्पर संयोग से होता है। आवश्यक हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, कार्बन आदि के सैकड़ों-हजारों परमाणुओं के संयोग से जीवन के अणु बनते हैं। बाद में इनसे जीवन की ईकाई बनती है। जैवरसायन में इस प्रकार के जैव अणुओं का अध्ययन किया जाता है। इस विषय का नामकरण भी आणविक जैविकी रखा गया है, क्योंकि इसमें जीवन का अध्ययन रासायनिक अणुओं के स्तर तक किया जाता है।

हम सदियों से देखते आए हैं कि मनुष्य विभिन्न पशुओं की नस्लों में और अनाज की किस्मों में सुधार करता आया है। विभिन्न रंगों के बाघ-बाघिनों का मेल कराने से तरह-तरह के बच्चे पैदा होते हैं। विदेशी गायों की नस्ल इस देश में लाई गई। मटर, गेहूं आदि की नई-नई किस्में तैयार की जाती रही हैं। हम ये भी देखते रहे हैं कि माता-पिता के नाक-नक्श, रंग, बालों का रंग, कद-काठी का असर संतानों पर पड़ता है। लोग उन्हें आनुवंशिक गुण कहते हैं। विभिन्न मूल के लोगों के संगम से विभिन्न प्रकार की संतानें होती देखी गई हैं पर ऐसा क्यों और किस तरह होता है, यह लोगों को ज्ञात नहीं था।

डॉ. खुराना ने न सिर्फ इस रहस्य का पर्दाफाश किया वरन दुनिया को यह बताया कि माता-पिता के गुण संतान में उनके शरीर में स्थित कोशिकाओं के केंद्र में स्थित क्रोमोसोम अर्थात गुणसूत्र के जरिये आ जाते हैं। उन्होंने अपने वैज्ञानिक साथियों के साथ प्रयोगशाला में एक जीन का भी निर्माण कर डाला, जिसमें रद्दोबदल से संतान के गुणों में परिवर्तन किया जा सकता है।

1970 में डॉ. खुराना मैसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी में जीवन विज्ञान और रसायन विज्ञान के प्रोफेसर हैं। उन्हें जीवाणु विज्ञान के क्षेत्र में कोनराड ए. एल्वेजेम प्रोफेसरशिप प्राप्त करने का भी गौरव प्राप्त है। यह प्रोफेसरशिप विश्वविद्यालय के पूर्व (स्वर्गीय) अध्यक्ष के नाम पर की गई है। यह पद विश्व के चोटी के जीवाणु-विशेषज्ञ को ही हासिल हो पाता है।

डॉ. खुराना को अपने विस्कोंसिन् विश्वविद्यालय पर भी गर्व है। उनके अनुसार, यह एंजाइम संस्थान अपने ढंग का अनोखा है और बड़ा होने के साथ-साथ इसमें पढ़ाने या विभागीय कार्य करने की पाबंदी भी नहीं है।

स्टोकहलोम में 1968 में नोबल विजेताओं के साथ डॉ खुराना

डॉ. खुराना न सिर्फ व्यक्तिगत रूप से उत्कृष्ट कार्य करते हैं वरन वह वैज्ञानिक दल के सदस्य के रूप में सामूहिक वैज्ञानिक गतिविधियों में भी भाग लेते हैं। उनके दल में विश्व के विभिन्न देशों-जापान, जर्मनी, नेपाल, ब्रिटेन, बेल्जियम, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और भारत जैसे देशों के वैज्ञानिक शामिल हैं। उनके सहायकों में भारतीय वैज्ञानिक भी शामिल हैं। उनके अनेक सहयोगी अपने देश वापस लौटकर वहां अपना अनुसंधान जारी रखे हैं। डॉ. खुराना ने 1966 में अमेरिकी नागरिकता हासिल कर ली और बेहतर वैज्ञानिक कार्य करने के लिए वह वहीं पर बस गये हैं।

डॉ. खुराना को अभी भी भारत से लगाव है और वह 1969 में भारत आए थे। दिसंबर 1983 में नई दिल्ली में आयोजित आनुवंशिकी की 15वीं अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस में भाग लेने के लिए वह फिर भारत आए। भारत सरकार ने उन्हें पद्मभूषण की उपाधि से अलंकृत किया, जबकि पंजाब विश्वविद्यालय ने उन्हें डॉक्टर ऑफ साइंस की उपाधि से नवाजा।

एमिला और जूला नामक दो पुत्रियों के पिता डॉ. खुराना एक सरल, सहृदय और मेहनती व्यक्ति हैं और अल्पसमय में ही उन्होंने वह अजूबा कर डाला, जिसे करने में वैज्ञानिकों को बरसों लगते हैं।

डॉ. हरगोविन्द खुराना को अनेक इनामों व खिताबों से नवाजा गया। 1958 में मर्क मेडल से सिलसिला प्रारंभ हुआ, जो कनाडा में मिला था और फिर कनाडा में ही पब्लिक सर्विस स्वर्ण पदक, 1967 में डैनी हैनमन पुरस्कार, 1968 में लास्कर फेडरेशन तथा लूसिया ग्राम होरुटिज पुरस्कार मिला। 1988 में तत्कालीन अमेरिकी राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन ने उन्हें नेशनल मेडल ऑफ साइंस से नवाजा। व्हाइट हाउस से हुई घोषणा के अनुसार अमेरिका का यह सर्वोच्च राष्ट्रीय वैज्ञानिक पुरस्कार उन्हें जीन संरचना और त्वचा के कार्य के विभाजन के लिए दिया गया। अब तक सिर्फ पांच वैज्ञानिक ही यह सर्वोच्च पुरस्कार पा सके हैं। उनके शोध को जीव विज्ञान तथा रसायन विज्ञान में काफी महत्त्व दिया जा रहा है।

पिछले एक दशक से भी अधिक समय से डॉ. खुराना ने अपना कार्य क्षेत्र बदल दिया है और अब वह जीन्स से हटकर दृष्टि और प्रकाश के क्षेत्र में काम कर रहे हैं। इस क्षेत्र में आने की प्रेरणा उन्हें तब मिली, जब वह प्रथम भारतीय नोबल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिक सी.वी. रमन की पुस्तक पढ़ रहे थे। इत्तफाक से वह अपने भारत दौरे के समय ताजमहल देखने भी गए। ताजमहल को जब उन्होंने अपनी वैज्ञानिक दृष्टि से देखा तो पाया कि चांदनी रात में ताजमहल के सामने खड़े होकर देखते रहने से एक घंटे बाद आप इसका पूरा आकार साफ देख सकते हैं। यदि आप कुछ और रुकें तो आप रात में भी ताजमहल उतने ही साफ रूप में देख पाएंगे जिस रूप में आप दिन में सूर्य के प्रकाश में देखते हैं।

इसके साथ ही उन्होंने दृष्टि और प्रकाश के क्षेत्र में काम करना प्रारंभ कर दिया। प्रोटीन पर प्रकाश के प्रभाव, मानव के प्रकाशग्रही कोशों पर प्रभाव के विषयों पर वह शोध करने लगे। वह प्रकाश का रासायनिक विश्लेषण, प्रभाव और दृष्टि पर महत्त्व समझना चाहते हैं। आशा है, इस नए क्षेत्र में भी वह कुछ कर दिखाएंगे।

डॉ. खुराना अमेरिकन नेशनल अकादमी ऑफ साइंसेज के सदस्य हैं। यह सम्मान विशिष्ट अमेरिकी वैज्ञानिकों को ही हासिल होता है।

डॉ. खुराना द्वारा आनुवंशिकी पर किए गए कार्य को सफलतापूर्वक आगे भी बढ़ाया जा रहा है। मियामी (फ्लोरिडा) विश्वविद्यालय के आणविका विकास संस्थान में ऐसा पर्यावरण बनाया गया है, जिसमें साधारण जड़ पदार्थ पेचीदा ढंग से समन्वित हो जाते हैं। इससे इन पदार्थों में चेतना की अनेक विशिष्टताएं पैदा हो जाती हैं। इस प्रकार उत्पन्न किए गए कण शिशुकणों को जन्म दे सकते हैं और स्वतः अपना पालन करने और विकसित होने में समर्थ हैं।

वैज्ञानिकों का मत है कि कोषाणु सरीखे ये कण पूर्वचेतना का ही रूप हैं जिनसे आज का जीवन शुरू हुआ होगा। जिन तत्त्वों से जीवन प्रारंभ हुआ होगा वे पर्यावरणात्मक हैं और आदिमकाल से पृथ्वी पर मौजूद हैं। ये सारे ब्रह्मांड के विभिन्न ग्रहों में सक्रिय हो सकते हैं।

डॉ. खुराना और उनके सहयोगियों ने इशेशियाकोलाई नामक जीवाणु, जो मनुष्य और जानवरों की आंतों में जीवित रहता है, के 207 जीन बनाए हैं। उन्होंने अपने बनाए जीन इस जीवाणु में प्रविष्ट कराए जो प्राकृतिक जीन की तरह काम करता है।

300 से अधिक प्रकाशित शोध लेखों के लेखक डॉ. खुराना अब भी अनुसंधान में रत हैं और उनसे बहुत आशाएं हैं।

ए.पी.जे. अब्दुल कलाम

श्यामला वाघरे

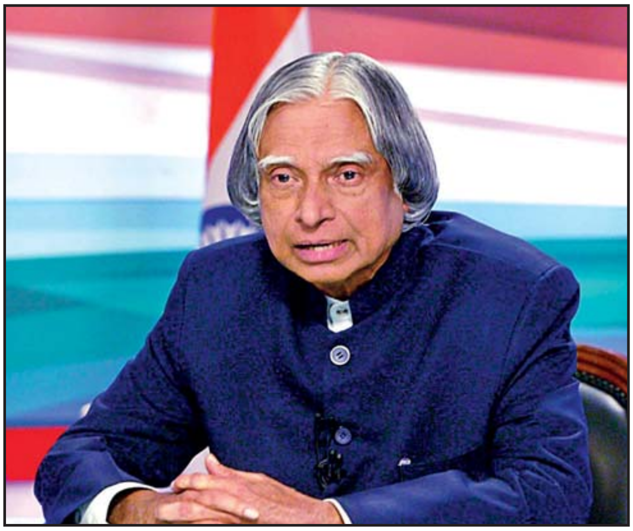

भारतीय मिसाइलों के जनक ए.पी.जे. अब्दुल कलाम का जन्म तत्कालीन मद्रास राज्य (अब तमिलनाडु) के पवित्र शहर रामेश्वरम् में 15 अक्तूबर 1931 को हुआ था। उनके पिता जैनुलब्दीन के पास न तो ज्यादा औपचारिक शिक्षा थी और न ही अधिक धन, पर वह और उनकी पत्नी आशिम्मा एक सहृदय दंपत्ति माने जाते थे।

अब्दुल कलाम कई भाई-बहन थे और वे पुराने बने एक बड़े व सादे मकान में रहते थे। उनका बचपन अत्यंत सुरक्षित वातावरण में बीता। रामेश्वरम् स्थित प्रसिद्ध शिव मंदिर में उनका नियमित आना-जाना था और वहाँ के पुजारी उनके पिता के अच्छे मित्र थे। बालक अब्दुल कलाम को अक्सर हिंदू और मुस्लिम धर्म-चर्चा में भाग लेने का अवसर मिलता था।

अब्दुल कलाम ने यथासमय प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण करना प्रारम्भ किया। आठ वर्ष की आयु में उन्होंने दूसरे विश्वयुद्ध के प्रारम्भ होने के बारे में जाना। उस समय महँगाई अचानक बढ़ गई थी।

हाईस्कूल की पढ़ाई अब्दुल कलाम ने रामनाथपुरम् स्थित श्वार्टज हाई स्कूल से की। उनके शिक्षक इयादुराई सोलोमन उनसे खासे प्रभावित थे। एक बार गणित के शिक्षक ने उनकी बेंत से जमकर पिटाई भी की। परन्तु जब उन्होंने पूरे अंक प्राप्त किए तो सभी शिक्षक भी उनसे अत्यंत प्रभावित हुए।

हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद अब्दुल कलाम अपने भाई की परचून की दूकान में भी हाथ बँटाया करते थे। कॉलेज में उन्होंने अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। उनका एक मित्र कट्टर तमिल ब्राह्मण परिवार से था और दूसरा ईसाई परिवार का था। सामान्य पढ़ाई के अलावा उन्होंने टालस्टॉय, स्कॉट, हार्डी जैसे लेखकों की रचनाएँ भी पढ़ीं। यहीं पर उन्होंने भौतिकशास्त्र के अध्ययन के दौरान परमाणु-संरचना, रेडियो-धर्मिता आदि का अध्ययन किया जो उनके भावी जीवन का आधार बना।

एक ओर वह विज्ञान का गहन अध्ययन कर रहे थे और दूसरी ओर, उन्हें उन काल्पनिक कहानियों को पढ़ने में भी आनंद आता था, जिनमें अंतरिक्ष, चंद्रमा आदि की यात्रा का वर्णन होता था। ज्योतिष में भी उनकी खासी रुचि थी।

बी.एस-सी. की डिग्री लेने के बाद अब्दुल कलाम ने मद्रास इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी में इंजानियरिंग की पढ़ाई के लिए प्रवेश लिया। घर की माली हालत इतनी खस्ता थी कि प्रारंभ में जब एक हजार रुपयों की आवश्यकता पड़ी तो उनकी बहन को अपनी सोने की चूड़ियाँ और माला गिरवी रखनी पड़ी। इससे अब्दुल

कलाम का संकल्प और बढ़ गया। पहले साल की पढ़ाई पूरी करने के बाद उन्होंने एयरोनॉटिकल इंजीनियरिंग को अपना विषय चुना।

इंजीनियरिंग की पढ़ाई के दौरान उन्हें अनेक विशिष्ट प्रोफेसरों से मिलने और उनके साथ काम करने का अवसर मिला। उनमें से एक प्रो. स्पोंडर को दूसरे विश्वयुद्ध में काम करने का अवसर मिला था। वह एयरोडायनॉमिक्स पढ़ाया करते थे। एक अन्य प्रोफेसर ने जर्मन युद्धक विमान की डिजाइन प्रक्रिया में भाग लिया था।

जब इंजीनियरिंग की पढ़ाई पूरी हुई तो परीक्षा के दौरान अब्दुल कलाम को एक नीची उड़ान भरने वाले जंगी जहाज का डिजाइन तैयार करने के लिए दिया गया। अब्दुल कलाम और उनके चार साथियों ने संयुक्त रूप से इस काम को अंजाम दे दिया।

पढ़ाई पूरी करने के बाद वह हिंदुस्तान एयरोनॉटिक्स लिमिटेड बंगलौर में बतौर ट्रेनी गए। वहाँ उन्होंने हवाई जहाज के इंजन के ओवरहालिंग का काम सीखा।

प्रशिक्षण समाप्त होने पर उनके पास दो विकल्प थे–या तो वह वायुसेना में भर्ती हों या रक्षा मंत्रालय की प्रयोगशालाओं में जाएं। युवक अब्दुल कलाम ने दोनों ही जगह आवेदन किया और रेल का टिकट लेकर सुदूर उत्तर में देहरादून की ओर चल दिए। रास्ते में उन्हें पूरे देश के मनोरम दृश्य देखने को मिले। उन्हें हर आदमी खेतों, खलिहानों और दूसरी जगह काम करता हुआ मिला।

पहले दिल्ली में उन्होंने रक्षा मंत्रालय में इंटरव्यू दिया। इसमें अनेक सवालों का सफलतापूर्वक जवाब दिया, पर उनका स्थान 25 प्रत्याशियों के दल में नवां था जबकि 8 अधिकारी लिए जाने थे। व्यथित अब्दुल कलाम ऋषिकेश पहुँचे जहाँ उन्होंने पवित्र गंगा नदी में स्नान किया और साधुओं के साथ कुछ समय बिताया। जहाँ वह साधुओं से प्रभावित हुए, वहीं साधुओं को भी उनके मुस्लिम होने पर कोई एतराज नहीं था। एक साधु ने उन्हें काफी सांत्वना दी।

वापस लौटकर दिल्ली आए और उन्होंने अपने इंटरव्यू के परिणाम की जानकारी माँगी। बदले में उन्हें नियुक्ति-पत्र दे दिया गया। उन्होंने 250 रुपये प्रतिमाह वेतन पर वरिष्ठ वैज्ञानिक सहायक के रूप में 1958 से काम करना प्रारंभ कर दिया। हवाई जहाज की मरम्मत के बारे में अधिक जानकारी हासिल करने के लिए उन्हें कानपुर भी भेजा गया। उस समय नेट विमानों की कार्यक्षमता के आकलन का काम भी चल रहा था।

विभिन्न छोटी-बड़ी परियोजनाओं पर काम करने के बाद उन्हें बंगलौर भेजा गया जहाँ एयरोनॉटिकल डेवलपमेंट इस्टैब्लिशमेंट की स्थापना की गई थी। वहाँ का मौसम और माहौल कानपुर से बिल्कुल अलग था। यहाँ उन्हें अपना काम खुद पैदा करना था। धीरे-धीरे उन्होंने अपनी परियोजना का कार्य बढ़ाया।

उस समय वी.के. कृष्ण मेनन भारत के रक्षा मंत्री थे। जब वह उनके संस्थान में आए तो उन्होंने नए बन रहे जहाज नंदी को खुद सवारी करके देखी। उन्होंने दोबारा इसकी सवारी करने का आश्वासन् भी दिया। उत्साहित कलाम और उनके साथी इस जहाज को अधिक प्रभावी बनाने में जुटे रहे, परंतु राजनीतिक कारणों से वी.के. कृष्ण मेनन को इस्तीफा देना पड़ा। नए मंत्री महोदय ने जहाज आयात करने का फैसला किया। इससे कलाम को गहरा आघात लगा।

तभी उन्हें रॉकेट इंजीनियर के पद पर नियुक्ति के लिए इंटरव्यू हेतु पत्र मिला। अंतरिक्ष शोध के लिए हुए इस इंटरव्यू में प्रश्नकर्ता डॉ. विक्रम साराभाई, प्रो. एम.जी.के. मेनन और श्री सर्राफ जैसे विद्वान लोग थे। कलाम ने इंटरव्यू पूरे आत्मविश्वास से दिया और प्रभावित बोर्ड सदस्यों ने उन्हें एक-दो दिन रुकने की सलाह दी।

अगले ही दिन उन्हें नियुक्ति की सूचना मिल गई। अब उन्हें अपना सपना साकार होता नजर आने लगा। 1962 के उत्तरार्द्ध में केरल स्थित तिरुअनंतपुरम के पास थुंबा में रॉकेट छोड़ने के लिए स्थल तैयार करने की तैयारी प्रारंभ हो गई। भारतीय रॉकेट युग की यह महत्त्वपूर्ण घटना थी।

अब्दुल कलाम ने इस प्रक्षेपण-स्थल के निर्माण-दल के सदस्य के रूप में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनके काम से प्रभावित होकर सरकार ने उन्हें अमेरिका स्थित नासा में 6 महीने के प्रशिक्षण-कार्यक्रम में शरीक होने के लिए भेजा।

उन्होंने वर्जीनिया स्थित नासा केंद्र में काम करना प्रारंभ कर दिया। यहाँ उन्होंने उपग्रह-प्रणाली का गहन अध्ययन किया। अंतिम चरण में वह वॉलप द्वीप स्थित नासा केंद्र में गए। यहाँ उन्हें एक पेंटिंग देखने को मिली, जिसमें अश्वेत लोगों को रॉकेट से वार करते हुए दिखाया गया था। दरअसल टीपू सुल्तान के समय भारत ने रॉकेटों के क्षेत्र में अच्छी प्रगति की थी। अब्दुल कलाम को इस बात पर गर्व हुआ और अंतरिक्ष, रॉकेटों आदि के प्रति उनका समर्पण और बढ़ गया।

अब्दुल कलाम के नासा से वापस आने के बाद 21 नवंबर 1969 को पहला भारतीय रॉकेट छोड़ा गया। यह रॉकेट नासा में ही तैयार किया गया था। इस रॉकेट को लाने और प्रक्षेपण-स्थल पर स्थित करने में काफी मशक्कत करनी पड़ी थी। यह पहला प्रक्षेपण सफल माना गया और इससे काफी महत्वपूर्ण जानकारियाँ हासिल हुईं।

इस घटना से प्रभावित प्रो. विक्रम साराभाई ने अब्दुल कलाम तथा उनके युवा साथियों से आगे की योजना के बारे में मशवरा किया। नए वैज्ञानिक उनसे काफी प्रभावित थे और उनके निर्देशों का बिजली की गति से पालन करते थे। सैटेलाइट लांच वेहीकल की तैयारी चलने लगी। बाद में थुंबा स्थित प्रक्षेपण-स्थल का और विकास किया गया और फ्रांस, अमेरिका तथा रूस ने इसमें सक्रिय सहयोग दिया।

इसके साथ ही अंतरिक्ष विज्ञान में व्यापक शोध-कार्यक्रम प्रारंभ हुए। रॉकेट ईंधन तैयार करने, प्रक्षेपण संयंत्र, एयरोनॉटिक्स, एयरोस्पेस सामग्री तैयार करने, प्रयोगशाला में बड़े पैमाने पर काम चला। रोहिणी रॉकेट कार्यक्रम भी प्रारंभ किया गया।

अब्दुल कलाम इस भारतीय रॉकेट युग के प्रारंभिक दौर की सफलता का श्रेय पंडित जवाहरलाल नेहरू और प्रो. विक्रम साराभाई को देते हैं, जिन्होंने अदूरदर्शी आलोचकों की परवाह न करके इस कार्यक्रम को आगे बढ़ाया। दरअसल साराभाई जो फैसले लेते, वह अंतरिक्ष वैज्ञानिकों के लिए जीवन के मिशन बन जाते थे। उन्होंने अब्दुल कलाम को एक विशेष कार्य सौंपा जिसमें उन्हें देश की सभी प्रयोगशालाओं से सहायता लेनी थी। इसके अलावा उन्हें अमेरिकी, रूसी, फ्रांसीसी, जर्मन और जापानी वैज्ञानिकों से भी संपर्क करना था।

काम बढ़ता गया। पहला रोहिणी-75 रॉकेट 20 नवंबर 1967 को छोड़ा गया। इसकी सफलता से प्रभावित प्रो. साराभाई ने उन्हें सैनिक हवाई जहाज के लिए रॉकेट प्रणाली विकसित करने का दायित्व सौंपा। इस काम के लिए रूस की सहायता ली जा रही थी। इसी बीच प्रो. साराभाई ने दस वर्षीय अंतरिक्ष कार्यक्रम घोषित किया। दूसरी ओर, रक्षा मंत्रालय ने मिसाइल कार्यक्रम तैयार किया।

इन दोनों में अपनी भूमिका पाकर अब्दुल कलाम का हौसला बढ़ गया। सेना की ओर से ग्रुप कैप्टन नारायणन काम कर रहे थे। 1962 और 1965 के युद्धों में भी यह सबक मिला था कि देश को अब रक्षा-प्रणाली में आत्मनिर्भर होना आवश्यक है।

अब्दुल कलाम में नेतृत्व के गुण भी विकसित हो चुके थे। वह न सिर्फ खुद काम करते थे, वरन अपने साथी कर्मचारियों से भी अच्छा काम करवाते थे। एक बार उन्होंने राटो सिस्टम पर काम के दौरान अपने अधीनस्थ से पूछा कि अच्छा काम कैसे तेजी से हो सकता है। उसने कहा कि लालफीताशाही रोकने से तेजी से हो सकता है। काम करने की पूरी आजादी होनी चाहिए। ठेका देने का अधिकार होना चाहिए। न्यूनतम मूल्य के बजाय तकनीकी गुणवत्ता के आधार पर काम दिया जाना चाहिए। धन मंजूरी में विलंब नहीं होना चाहिए तथा काम की पूरी जिम्मेदारी होनी चाहिए।

उस समय सरकारी महकमे में उपरोक्त बातें अनहोनी थीं। और कोई होता तो सुझाव अनसुने रह जाते, पर अब्दुल कलाम ने नई परियोजना के लिए उपरोक्त सुझाव प्रो. साराभाई से मंजूर करा लिए। इससे राटो परियोजना में तेजी से काम प्रारंभ हो गया।

1968 में भारतीय रॉकेट सोसाइटी का गठन हुआ था। 1969 में भारत की स्वदेशी उपग्रह छोड़ने की योजना बनी। इसके लिए चेन्नई से 100 कि.मी. उत्तर में श्रीहरिकोटा नामक स्थान चुना गया। यह एक द्वीप है जिसकी अधिकतम चौड़ाई 8 किलोमीटर है। इसके साथ ही एस.एल.वी. के चौथे चरण की तैयारी प्रारंभ हो गई।

काफी परिश्रम के बाद भी एस.एल.वी.परियोजना स्थगित कर दी गई। अब्दुल कलाम को एक बार फिर आघात का सामना करना पड़ा। इससे भी बड़ा आघात उन्हें तब लगा जब 1971 में 30 दिसंबर को प्रो. साराभाई का निधन हो गया।

इसी दौरान 1972 में राटो संयंत्र को बरेली हवाई अड्डे पर सैनिक विमान में सफलतापूर्वक लगाया गया। इससे भारतीय सेना को विदेशी मुद्रा की भारी बचत हुई।

अब्दुल कलाम का दिन प्रातः टहलने से प्रारंभ होता था। वह अपनी दो किलोमीटर की यात्रा में पूरे दिन का कार्यक्रम तय कर लेते थे। ऑफिस जाकर वह दस मिनट के अंदर सारे कागजात देख लेते थे और प्राथमिकता के आधार पर अलग-अलग कर लेते थे।

अब रक्षा अनुसंधान विभाग ने जमीन से हवा में मार करने वाली स्वदेशी मिसाइल विकसित करना प्रारंभ किया। फरवरी 1972 में प्रारंभ इस परियोजना का नाम डेविल रखा गया और इसके लिए 45 करोड़ रुपये की मंजूरी दी गई। तीन वर्ष की इस परियोजना के लिए एयर कमोडोर नारायणन तथा अब्दुल कलाम को कमान सौंपी गई। व्यस्तता के कारण कलाम की भागीदारी इस परियोजना में कम होती गई, पर परियोजना आगे बढ़ती गई।

1975 में इसरो (आई.एस.आर.ओ.) एक पूर्ण सरकारी संस्था बन गई और इसकी काउंसिल में अंतरिक्ष विभाग के वरिष्ठ अधिकारी रखे गए। इसी दौरान अब्दुल कलाम का टी.एन. शेषन से संपर्क हुआ जो अंतरिक्ष विभाग में सचिव थे।

1975 से 1978 तक भारत ने अंतरिक्ष में अपने कदम तेजी से फैलाए। इससे कलाम सहित सभी अंतरिक्ष वैज्ञानिकों का हौसला बढ़ता चला गया। पर इसी दौरान उन्हें अनेक आघातों का भी सामना करना पड़ा। उनके बहनोई और प्रेरक जलालुद्दीन का निधन हो गया। 1976 में उनके पिता चल बसे। वह काफी समय से बीमार थे। कलाम की इच्छा थी कि वह उस समय अपनी माता के साथ रहें पर उन्हें थुंबा वापस जाना पड़ा।

अब्दुल कलाम के वैज्ञानिक जीवन में अनेक असफलताएं भी आईं। हर बार उन्होंने अपनी असफलताओं के कारणों का आकलन किया और उन्हें सुधारते हुए आगे बढ़ते चले गए। जब एस.एल.वी. 3 की उड़ान असफल हुई तो अखबारों में कार्टून छपे पर कलाम सहित सभी वैज्ञानिक आगे की तैयारी में जुट गए।

अंततः एस.एल.वी. 3 ने 18 जुलाई 1980 को श्रीहरिकोटा से सफल उड़ान भरी। इसके तुरंत बाद रोहिणी उपग्रह 'पृथ्वी' का चक्कर लगाने लगा। पूरा देश उत्साहित था। भारत अब उन चंद देशों की श्रेणी में आ गया था जिनके पास उपग्रह-प्रक्षेपण की क्षमता थी।

31 मई 1981 को एस.एल.वी. 3 ने अगली उड़ान भरी। इस बार कलाम को प्रेस वालों का भी सामना करना पड़ा। डॉ. राजा रामण्णा ने अब्दुल कलाम को रक्षा अनुसंधान में आने का निमंत्रण दिया और गाइडेड मिसाइल तैयार करने का दायित्व सौंपा। अब्दुल कलाम इससे काफी प्रभावित हुए। साथ ही इसरो से रक्षा अनुसंधान में तबादले को साकार करने के लिए वह प्रो. सतीश धवन से भी मिले।

1981 में ही अब्दुल कलाम को पद्मभूषण से नवाजा गया। फरवरी 1982 में अब्दुल कलाम डी.आर.डी.एल. के निदेशक नियुक्त हुए। उस समय आर. वेंकटरमण भारत के रक्षा मंत्री थे।

यहाँ आने के बाद वह तेजी से गाइडेड मिसाइल कार्यक्रम में जुट गए। उन्होंने साउथ ब्लॉक में रक्षा मंत्री, सेना के तीनों प्रमुखों, कैबिनेट सचिव, रक्षा सचिव, व्यय सचिव आदि के सामने पूरी परियोजना को रखा। डॉ. अरुणाचलम ने उनका पूरा साथ दिया। उपस्थित लोगों ने अनेक सवाल किए और कलाम ने सभी के उत्तर दिए। संतुष्ट सदस्यों ने उन्हें रक्षा मंत्री से मिलने की सलाह दी। रक्षा मंत्री ने इंटीग्रेटेड मिसाइल कार्यक्रम तैयार करने की सलाह दी। उन्होंने अगले दिन फिर मिलने के लिए कहा।

सारी रात कलाम और उनके साथी तैयारी करते रहे। सबेरे नाश्ते के समय उन्हें याद आया कि आज शाम को तो उनकी भतीजी की शादी है। उन्हें दुःख हुआ, पर फिर वह सब कुछ भूलकर परियोजना की तैयारी में जुट गए।

नई परियोजना देखकर वेंकटरामन प्रसन्न हुए। उन्होंने इसे मंजूरी दे दी। प्रसन्न होकर डॉ. अरुणाचलम् ने वायुसेना के हेलीकॉप्टर से कलाम के जाने की व्यवस्था की और वह अपनी भतीजी की शादी में पहुँच गए।

रक्षा मंत्री ने इस नई परियोजना के लिए 338 करोड़ रुपये की मंजूरी दिला दी। डी.आर.डी.एल. के लोग इसकी तैयारी में जोर-शोर से जुट गए। जमीन से जमीन पर मार करने वाली मिसाइल का नाम 'पृथ्वी' रखा गया। जमीन से हवा में मार करने वाली मिसाइल का नाम 'आकाश' रखा गया। टैंक-भेदी मिसाइल का नाम 'नाग' रखा गया। एक अन्य प्रकार के अस्त्र का मान 'त्रिशूल' रखा गया। अब्दुल कलाम ने अपनी कल्पना की मिसाइल का नाम 'अग्नि' रखा।

अब्दुल कलाम जहाँ एक ओर इन परियोजनाओं को सफल बनाने में लगे थे, वहीं वह अपनी अब तक की असफलताओं के कारणों को भी पीछे ढकेल रहे थे ताकि उनका कुप्रभाव एकीकृत मिसाइल परियोजना पर न पड़ जाए। रक्षा मंत्री वेंकटरामन लगातार इस परियोजना में रुचि लेते रहे।

26 जून 1984 को पुरानी डेविल मिसाइल के परिवर्तित रूप को छोड़ा गया। भारतीय मिसाइल विकास के इतिहास में यह महत्त्वपूर्ण

कदम था। अब इंदिरा गाँधी खुद इस कार्यक्रम में रुचि लेने लगीं। जब वह खुद कार्यक्रम देखने आईं तो उन्होंने पूछा कि 'पृथ्वी' की उड़ान कब होगी ? जून 1987 में सम्भव है, तो उन्होंने पूछा कि इसे तेज करने के लिए और क्या करना पड़ेगा ? शायद उन्हें बहुत जल्दी थी।

इत्तफाक से टी.एन. शेषन अंतरिक्ष विभाग से रक्षा विभाग के सचिव होकर आ गए थे। वह अब्दुल कलाम को पूरे नाम से (अबुल पाकिर जैनुलब्दीन अब्दुल कलाम) पुकारते थे।

धीरे-धीरे देश के 12 शैक्षिक संस्थान और रक्षा अनुसंधान की 30 प्रयोगशालाएँ इस काम में जुट गईं। साथ में सी.एस.आई.आर., इसरो और उद्योग-जगत भी सहयोग कर रहा था।

जब भारत ने पोखरण में पहला परमाणु परीक्षण किया तो विश्व का छठा परमाणु सम्पन्न देश माना गया। एस.एल.वी. से उड़ान भरने पर भारत इस क्षेत्र में पाँचवाँ देश बना। सभी के मन में अब भारत को 'पहला', 'दूसरा' बनाने की इच्छा थी।

इंदिरा गाँधी के निधन से कलाम सहित भारतीय वैज्ञानिकों को धक्का लगा, पर वह अपने काम में लगे रहे। 16 सितंबर 1985 को 'त्रिशूल' ने श्रीहरिकोटा से उड़ान भरी। इसके बाद पायलट रहित विमान उड़ाया गया।

'पृथ्वी' के निर्माण में जादवपुर विश्वविद्यालय की युवा इंजीनियरों की टीम में प्रो. घोषाल के नेतृत्व में योगदान किया। बंगलौर स्थित इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस ने 'आकाश' के लिए महत्त्वपूर्ण सॉफ्टवेयर तैयार किया। 'अग्नि' के लिए आई.आई.टी. मद्रास के युवा इंजीनियरों ने काम किया। उस्मानिया विश्वविद्यालय ने 'नाग' के लिए काम किया। अब्दुल कलाम जगह-जगह चल रहे काम का मुआयना करते और उनका उत्साहवर्द्धन भी करते थे।

इसी बीच आई.आई.टी. दिल्ली की प्रो. भारती भट्ट ने सॉलिड स्टेट फिजिक्स लेबोलेटरी तथा सेंट्रल इलेक्ट्रॉनिक्स लिमिटेड साहिबाबाद के सहयोग से फेराइट फेज शिफ्टर विकसित किया और विदेशियों का इस पर एकाधिकार तोड़ दिया। इसका 'आकाश'' मिसाइल में उपयोग होता है।

पृथ्वी मिसाइल तैयार करने का काम 1988 के प्रारंभ में पूरा होने की ओर था। कलाम अब इसके छोड़े जाने की तैयारी करने लगे। अंततः 25 फरवरी 1988 को 11 बजकर 23 मिनट पर 'पृथ्वी' को छोड़ा गया। जमीन से जमीन पर मार करने वाली यह मिसाइल 1000 किलो वजन के परंपरागत बम ले जा सकती थी। यह 150 किलोमीटर तक मार कर सकती थी और इसका निशाना +50 मीटर तक सटीक था। इसमें परिवर्तन करके इसे जमीन से हवा में भी छोड़ा जा सकता है तथा पानी के जहाज से भी छोड़ा जा सकता है।

पृथ्वी की उड़ान से हमारे पड़ोसी देश घबरा गए, हालांकि हमारे देश की आवश्यकताओं की पूर्ति सिर्फ 'पृथ्वी' से नहीं हो पा रही थी। अब 'अग्नि' की तैयारी होने लगी। कलाम के नेतृत्व में 500 से भी अधिक वैज्ञानिक इस काम में जुट गए। काम पूरा करने का जोश इतना था कि लोग खाना और सोना भी भूल गए थे। परिवार के लोग किस कदर सहयोग कर रहे थे, इसका अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता था कि एक प्रमुख सदस्य नागराज के बहनोई का देहांत हो गया। वह अपने काम से विचलित न हो जाएं इसलिए उनके परिवार के सदस्यों ने यह खबर दबा दी।

20 अप्रैल 1989 को 'अग्नि' की उड़ान की योजना बनी। इसके लिए सारे सुरक्षात्मक उपाय किए गए। श्रीहरिकोटा और कार निकोबार में मिसाइल पर नजर रखने के लिए उपकरण लगाए गए। ज्यों-ज्यों उड़ान का दिन नजदीक आता गया,पूरे देश की निगाहें कलाम और उनके साथियों पर टिक गईं। विदेशी ताकतों ने इस कार्यक्रम को मुल्तवी करने के लिए दबाव बनाना प्रारंभ कर दिया, पर भारत सरकार अड़ी रही।

अंततः 22 मई 1989 को प्रातः सात बजकर 10 मिनट पर 'अग्नि' ने उड़ान भरी। प्रधानमंत्री ने इसे देश की सुरक्षा की दृष्टि से आत्मनिर्भर होने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम बताया। राष्ट्रपति वेंकटरामन ने अपने सपने को साकार होते देख बधाई का संदेश भेजा।

इस सफलता ने अनेक चर्चाओं और विवादों को जन्म दिया। पश्चिमी देशों ने सहायता बंद करने की धमकी दी। किसी ने कहा कि भारत ने पश्चिम जर्मनी की सहायता से यह मिसाइल तैयार की है। पर कलाम अविचलित रहे। वह अपनी मिसाइलों में और सुधार करने में जुट गए। उनके मन में आगे कई परियोजनाएं जन्म लेने लगीं।

1990 में गणतंत्र दिवस के अवसर पर अब्दुल कलाम को पद्मविभूषण से नवाजा गया। अपनी खुशी का इजहार करने का नया तरीका उन्होंने ईजाद किया और इसके तहत शीघ्र ही

‘नाग’ ने उड़ान भरी। जब देश अपनी स्वतंत्रता की चौवालीसवीं वर्षगाँठ मना रहा था, तब ‘आकाश’ ने परीक्षण उड़ान भरी। 1991 में जब खाड़ी-युद्ध प्रारंभ हुआ तो लोगों ने स्कड और पैट्रियट मिसाइलों का प्रभाव देखा। कलाम को संतोष था कि उनकी ‘पृथ्वी’ और ‘आकाश’ मिसाइलें उनसे बेहतर थीं। भारत अब अपने दुश्मन के दाँत खट्टे कर सकता है। कलाम ने रक्षा अनुसंधान के 500 वैज्ञानिकों के साथ खाड़ी-युद्ध के तकनीकी पहलुओं पर चर्चा भी की।

15 अक्टूबर 1991 को अब्दुल कलाम 60 वर्ष के हो गए। वह अवकाश लेना चाहते थे, पर सरकार ने उनकी प्रतिभा के मद्देनजर विश्राम नहीं दिया। कलाम काम करते रहे।

उन्होंने रक्षा मंत्री के वैज्ञानिक सलाहकार की हैसियत से काम किया। वह टेक्नोलॉजी इनफॉर्मेशन फोरकास्टिंग तथा एसेसमेंट काउंसिल (टिफैक) के अध्यक्ष भी रहे, जिसने ‘टेक्नोलॉजी विजन – 2020’ नामक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज तैयार किया। इसमें भविष्य में तकनीकी विकास की महत्त्वपूर्ण योजना है।

डा. कलाम ने सिर्फ सरकार के लिए ही काम नहीं किया। निजी उद्योग-जगत को भी उनकी महत्त्वपूर्ण अनुसंधान सलाहों से काफी लाभ हुआ। चीनी, फ्लाई एश आदि के लिए चलाए गए तकनीकी मिशनों को वह समय-समय पर सलाह देते रहे।

जब भारत ने 1998 में दोबारा एक के बाद एक सफल और पाँच बड़े परमाणु परीक्षण किए तो उनका नाम पुनः सुर्खियों में आया। इस पूरी तरह से गुप्त पर महत्त्वपूर्ण बड़े काम की विदेशी एजेंसियों को हवा तक नहीं लगने दी गई और पूरी सफलता का श्रेय कलाम के नेतृत्व में कार्य कर रहे वैज्ञानिकों को दिया गया।

भारत सरकार उन्हें 1997 में ‘भारतरत्न’ से अलंकृत कर चुकी थी। उन्हें भारत सरकार का मुख्य वैज्ञानिक सलाहकार बनाया गया जो भारत सरकार के कैबिनेट मंत्री के समकक्ष पद होता है। सीधे-सादे, सरल कलाम साहब को तकनीकी अनुसंधान को बढ़ाने वाली नीतियाँ विकसित करने का दायित्व दिया गया। इस पद का दायित्व निभाने के साथ-साथ उन पर वैज्ञानिक सलाहकार समिति के अध्यक्ष का भी दायित्व (पदेन) था। सरकार, गैरसरकारी संगठन और जनता के प्रयासों को एक सूत्र में पिरोकर देश को विकास की दिशा में ले जाने का लक्ष्य उनके सामने था।

सन् 2001 के अंत में कलाम साहब 70 वर्ष के हो चुके थे। तब भारत सरकार ने उन्हें अवकाश दिया। कलाम साहब ने भी योजना बनाई कि अब वह सरकारी काम से मुक्ति पाकर, भारत की नई पीढ़ी से बातचीत करके उनका वैज्ञानिक रुझान बढ़ाएंगे। उन्होंने चेन्नई स्थित एक विश्वविद्यालय में पढ़ाना भी प्रारंभ कर दिया।

सन् 2002 में राष्ट्रपति चुनाव का समय आया तो पाकिस्तान से युद्ध के बादल भी मंडरा रहे थे। परमाणु युद्ध की भी गुंजाइश थी। सभी राजनीतिक दलों को एक सर्वसम्मत उम्मीदवार की आवश्यकता थी।

अचानक कलाम साहब का नाम चमका और ध्रुव तारे की तरह चमकता ही चला गया। कम्युनिस्ट पार्टियों को छोड़कर शेष सभी पार्टियों ने उन्हें उम्मीदवार घोषित किया। 15 जुलाई को हुए चुनाव में वह भारी बहुमत से राष्ट्रपति चुने गए। भारत के इतिहास में वह पहले वैज्ञानिक हैं जो राष्ट्र के सर्वोच्च पद पर पहुँचे।

अब तक उन्हें सम्मानित करने वालों की लंबी सूची है। लगभग 25 विश्वविद्यालय/शिक्षण-संस्थान उन्हें डी.एस-सी. की मानद उपाधि से विभूषित कर चुके हैं। उन्हें नेशनल डिजाइन पुरस्कार, डा. बीरेन रॉय स्पेस पुरस्कार, ओम प्रकाश भसीन पुरस्कार, नेशनल नेहरू पुरस्कार ादि से सम्मानित किया जा चुका है। 1996 में उन्हें वाई. नायडुम्मा स्मृति स्वर्ण पदक मिला और उसी वर्ष जी. एम. मोदी विज्ञान पुरस्कार तथा उत्कृष्ट अनुसंधान के लिए एच. के. फिरोडिया पुरस्कार भी मिला। 1997 में राष्ट्रीय एकीकरण के लिए इंदिरा गाँधी पुरस्कार तथा 1998 में वीर सावरकर पुरस्कार भी मिला।

कलाम साहब अनेक संस्थाओं से संबद्ध रहे। वह एस्ट्रोनॉटिकल सोसाइटी के उपाध्यक्ष रहे। नेशनल इंजीनियरिंग अकादमी के फेलो रहे। वह नेशनल मेडिकल साइंसेज अकादमी के भी फेलो रहे तथा इंडियन साइंस अकादमी बंगलौर के भी फेलो रहै। इंस्टीट्यूट ऑफ इलेक्ट्रॉनिक्स एंड टेलीकम्यूनीकेशन इंजीनियर्स ने भी उन्हें मानद फेलो नियुक्त किया।

शिलांग में 27 जुलाई 2015 को एक भाषण के दौरान अचानक ह्रदय गति रुक जाने से उनका देहावसान हो गया।

श्रद्धा के आँसू

प्रकाश चन्द्र झा

ट्रेन जैसे ही चम्बल की घाटी में प्रवेश किया, डिब्बे के सभी यात्री सतर्क हो गए। हृदय अनेकानेक प्रकार की शंकाओं से भरने लगा। आए दिन अखबारों में प्रायः खबरें छपती रहती कि- कहीं न कहीं, किसी न किसी, ट्रेन में रोज ही डकैतियां हो रही हैं । हर अपरिचित युवक-खासकर जो दाढ़ी मूछों से अमीर और भरा-पूरा डील-डौल का हो, तो किसी भी समय उसके डकैत हो जाने का अंदेशा होता था। जो परिवार के साथ सफर कर रहे थे और जिनके साथ युवतियां और महिलाएं भी थीं, वे लोग कुछ ज्यादा ही चिन्तित नजर आ रहे थे। किसी भी क्षण, कोई भी हादसा हो जाने का डर इतना सबल था कि लोग आपस में बात-चीत करना भूल गए थे। मन ही मन यात्रा सकुशल होने के लिए ईश्वर से शायद प्रार्थना कर रहे थे। यात्रियों से खचा-खच भरे डिब्बे में भय और आंतक ने शांति की ऐसी चादर फैला दी थी कि लगता था मानो यहां कोई भी सजीव प्राणी नहीं है। सेठ गिरधारी लाल अपने पूरे परिवार के साथ सफर पर थे। डर के मारे कांप रहे थे। चेहरे पर हवाईयां उड़ रही थी।

सहसा ट्रेन की गति धीमी हो गई और एक झटके दे कर रूक गई। ''शायद किसी ने चेन पूलिंग किया है'' एक सह-यात्री ने शांति-भंग किया। सेठ गिरधारी लाल खिड़की से बाहर झांकने लगे। गोधूलि-वेला बीत चुकी थी। बाहर झुट-पुटा अंधेरा छाने लगा था। हाँ, कई मानव-शक्लें इधर-इधर चढ़ते-उतरते नजर आ रही थीं। ये हाल-फिलहाल में बना एक अवैध हॉल्ट था- जो किसी न्यायप्रिय, अंहिसा के पुजारी राष्ट्र नेता के नाम पर रखे गए थे। उसी समय डिब्बे के एक छोर पर कोलाहल होने लगा और कलह के शब्द कानों तक आने लगे। शायद बैठने के प्रश्न पर दो सज्जन शुद्ध-हिन्दी में तकरार कर रहे थे जो हाथापाई की नौबत से ठीक पहले की होती है। ट्रेन की सीटी सुनाई दी और फिर ट्रेन सरकने लगी।

कुछ क्षण पश्चात, पाजामा-कुर्ता पहने, लम्बा -कद, चौड़ा-सीना, स्वस्थ डील-डौल, दाढ़ी-मूछों से भरे चेहरे वाला एक नौजवान कंधे से झोला लटकाए उसी स्थान पर बैठने की जगह तलाशते हुए वहां आ पहुंचा। यहां यात्री तो कम थे, किन्तु सामान इतना फैला-बिखरा था कि एक नजर में बैठने की जगह भी हो सकती है- ये सोचा भी न जा सकता था। युवक ने उंगलियों के इशारे से सेठ जी को खिसकने को कहा। सेठ जी ने बेमन से थोड़ी सी जगह बनाई और बैठने दिया। दरअसल उसको देखते ही सेठ जी के प्राण सूख गए थे। कुछ बोलने की हिम्मत भी न पड़ती थी।

सेठ जी के हृदय में व्याप्त शंका उसके डाकू होने का प्रमाण अन्दर ही अन्दर एकत्र कर रही थी, और यह शक किसी भी क्षण सच हो सकता था। उस युवक को देखकर, पहली नजर में, उसके किसी दार्शनिक या फिर नितान्त बेरोजगार होने का भ्रम हो सकता था। गौरवर्ण और तेजस्वी मुखड़ा उसके किसी अच्छे खानदान से ताल्लुक होने का प्रमाण-पत्र प्रस्तुत कर रहा था ।

घर में शेरनी की भांति दहाड़ने वाली सेठ की गतयौवना धर्मपत्नी अभी लोमड़ी की भांति डरी, सहमी बैठी थी। डर का होना भी स्वाभाविक था। सुरक्षित यात्रा के लिए मंगलसूत्र, कर्णफूल और चंद अंगूठियों को छोड़कर और कोई भी जेवर साथ नहीं लाई थी, किन्तु वह भी यहां अभिशाप हो रहा था। साथ में दो चंचल, सुन्दर

और समर्थ पुत्रियाँ भी थीं। वे भी माता से सटकर ही बैठी थीं। सभी मौन और सांकांक्ष थे।

“आजकल तो जमाना इतना खराब हो गया है कि ट्रेन और बस में भी ठीक-ठाक सफर करना भी मुश्किल हो गया है।” साड़ी का पल्लू ठीक करने के बहाने युवक की नजरों से मंगल-सूत्र को छिपाते हुए सेठानी बोली । उनका इशारा निसन्देह सेठ जी के तरफ ही था। सो तो है-सेठ जी ने कहा। इसी बीच सेठानी जी ने अपने हाथ की अंगूठी सेठ जी मोजे में ठूस दिया और एक अर्थपूर्ण आँख मारी,जो आपदा के समय भी चालाकी दिखाने के भाव से ओत-प्रोत था।

अब तक वह नौजवान चुप था किन्तु हल्के से मुस्कान के साथ उसने बात-चीत प्रारंभ किया। “आपको कहां तक जाना है?” सेठ जी से पूछा।

इतना पूछना ही था कि सेठ जी को मानों सांप सूंघ गया। काटो तो खून नहीं। ह्रदय की धड़कन तेज होने लगी।

सेठ जी हिम्मत बटोरते हुए कूटनीतिक अंदाज़ से बोले - “भाई परदेशी का क्या ठिकाना? इधर भी अपने बहुत सारे रिश्तेदार हैं; चाहें तो अगले स्टेशन पर भी उतर सकते हैं। ”

युवक सेठानी जी की ओर चेहरा करते हुए बोला- “अभी आपने कहा- कि जमाना बहुत खराब है; आखिर अच्छा जमाना था ही कब? हर एक पीढ़ी ने अपने आगे वाले पीढ़ी को खराब जमाना का नाम दिया है और यह क्रम वर्षों से अनवरत चला आ रहा है।”

सेठ जी अपनी उम्र और परिपक्वता का धौंस ज़माने के लिहाज़ से बोले- “भाई साहब ! पहले ऐसा नहीं था। लोग हजारों रुपये, जेवर लेकर निश्चिन्तता से चलते थे, कहीं चोरी-डकैती का नाम नहीं था। लोग पुलिस की टोपी देखकर पेशाब कर देते थे। लेकिन अब तो सामने-सामने होकर दो-दो हाथ करने पर तैयार रहते है। यह भी कोई जमाना है। घोर कलियुग आ गया है, घोर कलियुग”

तब तक एक चाय वाला चाय बेचते हुए आ गया और वार्तालाप बिना किसी निष्कर्ष के मध्य में ही स्थगित गया। युवक ने स्वयं भी चाय लिया और सेठ-सेठानी एवं उनकी पुत्रियों के लिए भी चाय बढ़ाने को कहा। सेठ जी को उस वक्त, पता नहीं क्या हो गया कि वो चाहकर भी इन्कार न कर सके।

सेठ जी ने चाय के कप को हाथों में ले लिया और क्रमशः सेठानी जी और उनके पुत्रियों ने भी लिया। उनकी सुपुत्रियां तो चटकारे लेकर मिट्टी के कुल्लमड़ में चाय पीने लगी, शायद मिटटी का स्पर्श पाकर चाय की अपनी खुश्बू कुछ और सौंधी हो गई थी। किन्तु सेठ जी को डर लग रहा था कि कहीं इसमें कोई नशा न मिला हो? कहीं चाय वाला भी उसी गैंग का न हो। न पीते बनती थी न छोड़ते। सांप-छुछुन्दर की गति हो गई। मस्तिष्क में शंकाओं का ऐसा तूफान उठा था कि हाथ कप को ओठों तक ले जाना भी भूल गया. कुछेक क्षण पश्चात्, जब युवक ने चाय ठंठी होने की बात बताई तो उन्हें भगवान का नाम लेकर पीना पड़ा। मगर मन में शंका इतनी ज्या्दा थी- कि लगता था उन्हें चाय पीकर शराब से भी ज्यादा नशा हो जाएगा।

युवक ने उनकी मनोभावों को ताड़ लिया और शक दूर करने के लिए अपना परिचय देना मुनासिब समझा।

युवक- “मेरा नाम विवेक सिंह है। मैं जबलपुर का रहने वाला हूँ। इधर अक्सर आता जाता रहता हूँ। ठीकेदारी का कुछ काम चलता है”

सेठानी अपनत्व का भाव जाहिर करती हुई बोली- “आपने नौकरी क्यों नहीं की? कितनी पढ़ाई लिखाई की है?”

“भाभी जी! मैने एम.ए. की है, वकालत की पढाई की, किन्तु नौकरी नसीब नहीं थी। फिर यूं ही जीने के लिए कुछ सहारा खोज लिए हैं ;ऊपर वाले की दुआ से दो वक्त की रोटी मिल जाती है” - चिता में भी एक आत्मसंतुष्टि का आवरण ओढ़ते हुए उस युवक का उत्तर था.

उस अपरिचित युवक के मुँह से भाभी जी का सम्बोधन सुनकर सेठानी जी मारे लज्जा के लाल हो गई थी। ओस की बून्दों से गीली सूखी कली भी सुन्दर प्रतीत होने लगती है।

अचानक डिब्बे का बातावरण बदल गया। धड़ाधड़ चारों गेट बन्द होने की धमाकेदार आवाज आई और पलक झपकते ही पूरे डब्बे में पन्द्रह-सोलह नौजवान फैल गए। किसी के हाथ में पिस्तौल तो किसी के हाथ में बड़ा सा चाकू। सभी बार-बार दुहरा रहे थे- “कोई हल्ला नहीं करेगा। कोई आवाज नहीं करेगा।”

ट्रेन में डकैती शुरू हो गई। सेठ जी मूर्छित हो गए। सेठानी दोनो बेटियों को पीछे रखते हुए एक कोने में खड़ी हो गई और “जै

भगवान, जै भगवान" बदहवास बोले जा रही थीं। लड़कियों की हालत का बयान करना संभव नहीं। मारे डर के ऑंखें पत्थर हो गईं, पलकों ने झपकाना बंद कर दिया.

श्री विवेक सिंह निर्भीक भाव से उठे और सेठ जी के वाटर-बाटल से पानी निकालकर उनके चेहरे पर छींटा डाला। किन्तु सेठ जी को होश नहीं आया। सेठानी जी इस दृश्य को देखकर मरे जा रही थीं। एक तरफ पति का प्राण, दूसरी तरफ बेटियों की इज्जत; दोनों ही खतरे में थे। शरीर में धारण किए जेवरों के लुट जाने का डर भी कम नहीं था। फिर भी विवेक सिंह ने सांत्वना देते हुए कहा- "घबराईए नहीं, सब ठीक हो जाएगा"

"तड़ाक, तड़ाक" और दो तमाचे विवेकसिंह के गालों पर पड़े । यह शायद सेठ जी को पानी मारकर होश में लेन की कोशिश और पत्नी व पुत्रियों की हिम्मत बढ़ाने के प्रतिक्रिया स्वरूप पास ही खड़े एक डाकू ने मारा।

फिर तो विवेक सिंह का खून खौल उठा और चेहरा क्रोध से तमतमा उठा । महिलाओं के समक्ष पुरूषों का साधारण अपमान भी गम्भीर हो जाता है और उसका पुरुषार्थ उसे ललकारने लगता है। वह मर-मिटने को क्षण-भर में तैयार हो जाता है।

बलिष्ठ विवेक सिंह उस डाकू से उलझ गया और उसे वहीं पटक दिया। फिर तो उसने मुक्कों, घूसों की झड़ी सी लगा दी । पिटते डाकू की चीख सुनकर तब तक डाकू के अन्य साथी भी वहां आ जुटे। करीब चार-पांच डाकुओं ने मिलकर विवेक सिंह को काबू में किया और उसे घसीटकर डिब्बे के एक छोर तक ले गए। मगर वह उछल-उछलकर वार करता ही रहा। उसे काबू में रखना मुश्किल हो रहा था। न जाने ऐसे लम्हों में कहां से अदम्य साहस और विशाल शक्ति आ जाती है।

लूट-पाट थोड़ी देर के लिए थम सी गई। किन्तु विवेक पर चाकू के वार पर वार होने लगे। वह गिर पड़ा और छटपटाने लगा। दो, चार, दस, बारह और न जाने कितने वार उस पर हुए। यह क्रम जारी ही था कि दूसरा हाल्ट आ गया। वहाँ चढने वाले कुछ ज्यादा ही लोग थे। डाकुओं ने स्थिति को भांप लिया और दूसरी ओर से आनन-फानन में उतर गए।

डिब्बे के जिस छोर पर विवेक सिंह को डाकू घसीटकर ले गये थे, वहाँ से शोणित की एक धारा डिब्बे के मध्य तक पहुँच चुकी थी जहाँ सेठ जी का परिवार अवस्थित था. डिब्बे के कुछ लोग ही उस छोर तक जाने की हिम्मत जुटा पाए. रेलवे का दो पुलिस डंडा लिए घटनास्थल की ओर खिड़की से आते दिखाई दिए. शोरगुल के बीच स्ट्रेचर पर छटपटाते एक शरीर को कुलियों द्वारा उठाकर ले जाते हुए देखा गया.

कुछ ही पलों में खबर आई की घायल ने दम तोड़ दिया। दम तोड़ने के शब्दों को सुनते ही सेठानी एवं उनकी पुत्री सहित एक असीम श्रद्धा के आंसू बहाते रहे।

डॉ. प्रफुल्लचंद्र राय

जयप्रकाश यादव

पूर्वी बंगाल के खुलना जिले का रूड़ौली गांव लंबे समय से भारत-भर में प्रसिद्ध रहा है। यहां के राजाओं ने दिल्ली के सुल्तानों और उनके नवाबों की सत्ता कभी नहीं मानी। बंगला के महाकवि मधुसूदन दत्त भी यहीं के निवासी थे।

इसी गांव के जमींदार हरिश्चंद्र राय के घर एक बालक ने *2* अगस्त *1861* को जन्म लिया। बालक का नाम प्रफुल्ल रखा गया। हरिश्चंद्र राय स्वयं भी शिक्षित थे और अपने गांव में प्राथमिक विद्यालय भी चलाते थे। कालांतर में बालक प्रफुल्ल भी इसी विद्यालय में जाने लगा।

अंग्रेजी, फारसी, बंगला भाषाओं के ज्ञाता हरिश्चंद्र राय उस समय के प्रमुख समाज-सुधारकों ईश्वर चंद्र विद्यासागर आदि से प्रभावित थे। उन्होंने बाल प्रफुल्ल को अच्छे संस्कार दिए। प्रफुल्ल को भी पढ़ने का बड़ा शौक था। एक बार जब वह पेचिश का शिकार हो गया तो भी वह लेटे-लेटे पढ़ता ही रहता था। उसने पिता की लाइब्रेरी की तमाम किताबें पढ़ डाली थीं। वह न्यूटन, गैलीलियो, बेंजामिन फ्रैंकलिन, लिंकन आदि से बहुत प्रभावित था और नियम से प्रतिदिन समाचार पत्र पढ़ा करता था।

9 वर्ष की आयु में प्रफुल्ल ने 1870 में कलकत्ता के हैयर स्कूल में पढ़ाई प्रारंभ की। प्रारंभ में उसे ग्रामीण रहन-सहन के कारण हँसी का सामना करना पड़ा और वह थोड़ा अलग रहकर ज्यादा पढ़ाई करने लगा। वैज्ञानिकों के जीवन-चरित्र उसे बहुत प्रभावित करने लगे। जब उसने एक अंग्रेजी लेखक की पुस्तक में वर्णित एक हजार महान लोगों की सूची में सिर्फ एक भारतीय राजा राममोहन राय का नाम देखा तो उसने भी महान बनने का निर्णय ले लिया।

बीमारी के कारण कमजोर शरीर वाले प्रफुल्ल ने दिनचर्या को व्यवस्थित किया और स्वास्थ्य के नियमों का पालन भी प्रारंभ किया। व्यायाम से उन्होंने अपना शरीर मजबूत बनाया।

एंट्रेंस की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद उन्होंने विद्यासागर कॉलेज में एफ.ए. की पढ़ाई प्रारंभ की। इस दौरान रसायन विज्ञान में भी उनकी रुचि बढ़ने लगी। वह प्रेसीडेंसी कॉलेज में भौतिक शास्त्र और रसायन शास्त्र के व्याख्यान भी सुनने जाते थे। रसायन विज्ञान की जो भी पुस्तक उनके हाथ लग जाती थी, वह उसे पूरा पढ़ जाते थे।

जब वह छात्रावास में रहने लगे तो उन्होंने अपने कमरे में एक छोटी प्रयोगशाला भी लगा ली। मजे की बात यह थी कि वह कालिदास के संस्कृत नाटकों का भी अध्ययन करते थे। उन्हें देशभक्ति और स्वदेशी आंदोलन में भी रुचि थी।

1882 में उन्होंने एक छात्रवृत्ति प्रतियोगिता में भाग लेकर छात्रवृत्ति हासिल की और इंग्लैंड के एडिनबरा विश्वविद्यालय में प्रवेश पाया। यह समाचार उस समय स्टेटमैन में छपा। प्रफुल्ल माता-पिता से आज्ञा लेने गांव गए। उस समय परिवार की आर्थिक स्थिति गिर रही थी। माता को हिम्मत देते हुए उन्होंने वचन दिया कि लौटकर वह बिकी हुई जमीन वापस खरीदवा देंगे और गिरता हुआ मकान बनवा देंगे।

एडिनबरा में प्रफुल्लचंद्र राय ने प्रख्यात रसायन वैज्ञानिक अलेक्जेंडर ब्राउन के निर्देशन में कार्य प्रारंभ किया। उनके लेख

निरंतर छपते रहे और 1885 में उन्होंने बी.एस.सी. की परीक्षा पास कर ली। उन्होंने न सिर्फ अंग्रेज रसायनशास्त्रियों से परिचय बढ़ाया वरन जर्मन भाषा सीखकर जर्मन वैज्ञानिकों के भी संपर्क में आए। वह जगदीशंचद्र बसु से भी मिले जो उस समय इंग्लैंड में ही अध्ययन कर रहे थे। वहां पर भी प्रफुल्ल राजा राम मोहन राय की तरह भारतीय पोशाक ही पहनते थे।

प्रफुल्ल ने अब कच्ची धातु का विश्लेषण विषय पर शोध कार्य प्रारंभ किया। 1888 में उन्हें अकार्बनिक रसायन पर डी.एस.सी. की उपाधि मिली। उन्हें अनेक छात्रवृत्तियां भी मिलीं। 1887-88 में एडिनबरा विश्वविद्यालय की रसायन शास्त्र की सोसायटी ने उन्हें अपना उपाध्यक्ष चुना।

आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र राय प्रयोग करते हुए

प्रफुल्लचंद्र राय ने सिर्फ विज्ञान में ही नहीं नाम कमाया वरन अपने राष्ट्रवादी निबंधों और विचारों में भी वहां रहने वाले भारतीयों और अंग्रेजों को प्रभावित किया। हालांकि उनके लेख ब्रिटिश सरकार पर खुला व्यांग्यात्मक प्रहार करते थे पर वे इतने मर्मस्पशी होते थे कि सहृदय अंग्रेज उनकी प्रशंसा करने लगते थे। प्रफुल्लचंद्र राय के लेख लंदन के सभी प्रमुख अखबारों में छपते और लोगों को बताते कि अंग्रेजों ने किस तरह भारत को लूटा है और भारतवासी कैसी यातनाएं झेल रहे हैं।

पूरी निष्ठा और लगन से पढ़ाई करने के बाद एकांतप्रिय प्रफुल्ल को भारत की याद सताने लगी। वह भारतीय शिक्षा सेवा में जाना चाहते थे पर उन दिनों भारतीयों को उच्च पद नहीं दिए जाते थे। अंततः उन्होंने 1889 में कलकत्ता स्थित प्रेसीडेंसी कॉलेज में सहायक प्रोफेसर की नौकरी कर ली। उनका वेतन मात्र 250 रु. प्रतिमाह था। वह पूरी निष्ठा और लगन से न सिर्फ अध्यापन करते रहे वरन शोध और अन्वेषण में भी लगे रहे।

वह मातृभाषा में ज्ञान प्राप्ति पर बहुत जोर देते थे। छात्रों को वह उदाहरण देते कि रूसी वैज्ञानिक दिमित्री मैंडलीफ ने विश्वप्रसिद्ध तत्त्वों का पैरियोडिक टेबल रूसी में प्रकाशित कराया, अंग्रेजी में नहीं। प्रफुल्लचंद्र राय ने अपने कुशल अध्यापन से मेघनाथ साहा जैसे रसायनशास्त्री तैयार किए।

सन् 1894 में प्रफुल्लचंद्र राय ने सबसे पहली खोज पारे पर की। उन्होंने अस्थायी पदार्थ मरक्यूरस नाइट्रेट को प्रयोगशाला में तैयार कर दिखाया। अपने इस असाधारण कार्य से वह विश्व के श्रेष्ठ सायन वैज्ञानिकों में गिने जाने लगे।

बंगाल सरकार ने प्रसन्न होकर उन्हें यूरोप की तमाम प्रयोगशालाओं में जाने के लिए चुन लिया। उनका यूरोपीय दौरा बहुत उपयोगी रहा। एक और उनकी नए-नए क्षेत्रों में प्रतिष्ठा बढ़ी और दूसरी ओर, उन्हें शोध संबंधी नई-नई बातों का ज्ञान हुआ तथा उनका शोध और ज्ञान का भंडार खासा विस्तृत हो गया।

प्रफुल्लचंद्र राय अपने कृतित्त्व का सीधा उपयोग जन-साधारण के लिए करना चाहते थे। वह जानते थे कि भारतीय जीवन रक्षक दवाइयों के लिए विदेशों पर निर्भर हैं। उन्होंने औषध निर्माण का कार्य अपने हाथ में लिया और मात्र 800 रुपये की पूंजी से अपनी प्रयोगशाला में निर्माण प्रारंभ किया। अपनी आय का अधिकांश हिस्सा वह इसमें लगाते रहे। घर पर पशुओं की हड्डियां जलाकर उन्होंने शक्तिवर्धक फास्फेट ऑफ कैल्सियम तैयार किया। यह कारखाना धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगा और 1900 में यह बड़ा भारी कारखाना बन गया। आज भी बंगाल केमिकल्स एंड फार्मेस्युटिकल वर्क्स के नाम से जान जाता है। अपना सब कुछ इसके लिए लगाने वाले प्रफुल्लचंद्र राय ने 1902 में इसे लिमिटेड संस्थान में परिवर्तित कर दिया और अपने हिस्से के लाभ का प्रयोग एक ट्रस्ट को सौंप दिया, जो उनके जन्मस्थान खुलना में विद्यालय संचालन तथा अन्य लोकोपयोगी कार्य करता रहा। उन्होंने अनेक जड़ी-बूटियों से दवा तैयार करने के फार्मूले तैयार किए, जो अत्यंक सफल रहे।

प्रफुल्लचंद्र राय इस बात से खिन्न रहते थे कि बंगाली नवयुवक पढ़-लिखकर नौकरी के लिए यहां-वहां मारे-मारे फिरते हैं। वह रसायन उद्योग विकसित करने का बीड़ा उठा लिये और उन रासायनिक चीजों का विकास किया जो बड़े पैमाने पर इस्तेमाल होती हैं। उन्होंने सौदेपुर में गंधक का तेजाब बनाने वाले कारखाने, चीन मिट्टी के बरतन बनाने वाले कारखाने कलकत्ता पॉट्री एनेमल वर्क्स, जहाजरानी कंपनी बंगीय स्टीम नेविगेशन कंपनी आदि की स्थापना और संचालन में प्रमुख भूमिका निभाई।

वह प्रयोगशाला में अनेक मौलिक अनुसंधानों जैसे अमोनिया नाइट्रेट यौगिकों आदि में लगे रहे। उनकी सफलता ने विश्वविद्यालय रसायनशास्त्रियों विलियम रैम्से, जेम्स देवार, वेंटहाफ, बर्थेलेट आदि को दांतोतले उंगली दबाने के लिए मजबूर कर दिया।

प्रफुल्लचंद्र राय का एक प्रमुख काम रसायन विज्ञान के क्षेत्र में प्राचीन भारतीय ज्ञान को जनता के सामने लाना और उसे जनोपयोगी बनाना था। सबसे पहले उन्होंने प्राचीन भारतीय रसायनशास्त्री नागर्जुन के ग्रंथ रसेंद्रसारसंग्रह पर एक लेख लिखा। इस लेख की व्यापक सराहना हुई। इसके बाद उन्होंने प्राचीन काल के अनेक ग्रंथों का अध्ययन कर डाला और भारतीय हिंदू रसायनशास्त्र का इतिहास नामक पुस्तक लिखी।

1902 में प्रकाशित इस पुस्तक ने तहलका मचा दिया। अनमोल ज्ञान से परिपूर्ण यह पुस्तक यह साबित करती है कि भारत 13वीं-14वीं सदी का विज्ञान के क्षेत्र में बहुत आगे था। प्रफुल्ल यहीं नहीं रुके। आगे अध्ययन करते रहे। 1908 में इस पुस्तक का दूसरा खंड प्रकाशित हुआ। यह पुस्तक 1956 में भारतीय केमिकल सोसाइटी द्वारा दोबारा प्रकाशित की गई और आज भी पढ़ी और समझी जाती है। इसका अनेक यूरोपीय भाषाओं में अनुवाद हुआ। दिरहम विश्वविद्यालय ने उन्हें इस पुस्तक के लिए डी.एस.सी. की डिग्री भी प्रदान की।

अनेक लोग प्रफुल्लचंद्र राय को वैज्ञानिक कम और लोकसेवक ज्यादा मानते थे। जब कभी भी बाढ़ आदि के कारण विनाश होता था, प्रफुल्लचंद्र राय अपनी प्रयोगशाला छोड़कर राहत कार्य में जुट जाते थे। जब सन् 1922 में भयंकर अकाल पड़ा वह सहायता कार्य में लग गए। नेताजी सुभाषचंद्र बोस ने अपने प्रारंभिक दिनों में उनके मार्गदर्शन में ही काम किया। वह अपने साथ बंगाल के नवयुवकों और छात्रों को भी लगा लेते थे।

उन्हें स्वदेशी से बड़ा प्रेम था। वह राष्ट्र की हर चीज देश में ही बनाना चाहते थे। चरखा और खादी से पूरा प्रेम करने वाले प्रफुल्लचंद्र राय शोधकार्य के अलावा दान, देशभक्ति, समाज-सुधार में भी लीन रहते थे। उन्होंने सामाजिक संस्थाओं की स्थापना की जिनमें महिला उत्थान के लिए संगठन भी बनाया था। गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर उनके प्रशंसक थे। उन्होंने प्रफुल्ल बाबू के बारे में लिखा था- "उपनिषद में कहा गया है कि मैं एक होकर भी अनेक हो सकता हूं। इस सत्य को प्रफुल्ल बाबू ने साबित कर दिया है। वह लाखों हृदयों में विद्यमान हैं।"

सहायक प्रोफेसर के रूप में नौकरी प्रारंभ करने वाले प्रफुल्लचंद्र राय समयानुसार वरिष्ठ प्रोफेसर बने। जब उन्होंने नियमानुसार 1911 में अवकाश ग्रहण किया तो महान शिक्षाशास्त्री सर आशुतोष मुखर्जी के निवेदन पर वह नवसृजित विज्ञान महाविद्यालय कलकत्ता में प्रोफेसर नियुक्त हुए।

उनके शोधकर्ताओं की संख्या लगातार बढ़ती रही। विभिन्न रसायनशास्त्र सबंधी विषयों पर उनके मौलिक शोध-पत्रों की संख्या 200 तक पहुंच गई।

सादा जीवन व्यतीत करने वाले प्रफुल्लचंद्र राय अपने सेवाकल के उत्तरार्द्ध में अपना वेतन विश्वविद्यालय को दान करने लगे। इस राशि से न सिर्फ कॉलेज का विकास हुआ वरन आज भी अनेक छात्रवृत्तियां, उनके नाम पर, नागार्जुन के नाम पर और सर आशुतोष मुखर्जी के नाम पर दी जाती हैं।

अपने देश से अनन्य प्रेम करने वाले प्रफुल्लचंद्र राय अनेक बार विदेश भी गए और हर बार उन्होंने अपने गहन ज्ञान से नई छाप छोड़ी। 1904 में वह बंगाल सरकार के प्रतिनिधिमंडल के रूप में यूरोप गए। 1912 में कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रतिनिधी के रूप में गए और पहली बार आयोजित ब्रिटिश विश्वविद्यालयों के सम्मेलन में शिरकत की। उन्होंने अपने भाषण से अंग्रेज वैज्ञानिकों को खासा प्रभावित किया।

अनेक विश्वविद्यालयों, संस्थाओं व सरकार ने उन्हें समय-समय पर सम्मानित किया। कलकत्ता, ढाका, बनारस विश्वविद्यालयों ने उन्हें उपाधियों से विभूषित किया। 1911 में उन्हें ब्रिटिश सरकार ने सर की उपाधि प्रदान की। 1934 में वह लंदन रसायन सोसाइटी के सम्मानित सदस्य चुने गए। 1924 में उन्होंने भारतीय रसायन सोसाइटी का उद्घाटन किया। इसकी स्थापना के लिए उन्होंने 12 हजार रुपये दान किए थे। उन्होंने ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी के अनेक विश्वविद्यालयों में भाषण दिया और सम्मान पाया।

डॉ. राय को इतिहास, साहित्य आदि से विशेष प्रेम था। वह रवींद्रनाथ ठाकुर, मधुसूदन दत्त, शेक्सपीयर आदि को नियमित रूप से पढ़ते थे। 1932 में उन्होंने अपनी आत्मकथा "एक बंगाली रसायनवेत्ता का जीवन और अनुभव" पूरी की। अंग्रेजी में लिखी यह रचना उनके जीवन के अनछुए पहलुओं पर प्रकाश डालती है।

महान रसायनशास्त्री के रूप में प्रसिद्ध डॉ. प्रफुल्लचंद्र राय विज्ञान की अपेक्षा स्वराज्य को तरजीह देते थे। 1901 से वह गोपालकृष्ण गोखले और महात्मा गांधी के मित्र बन चुके थे और 19 जनवरी 1902 को उन्होंने कलकत्ता में महात्मा गांधी की पहली सभा करवाई।

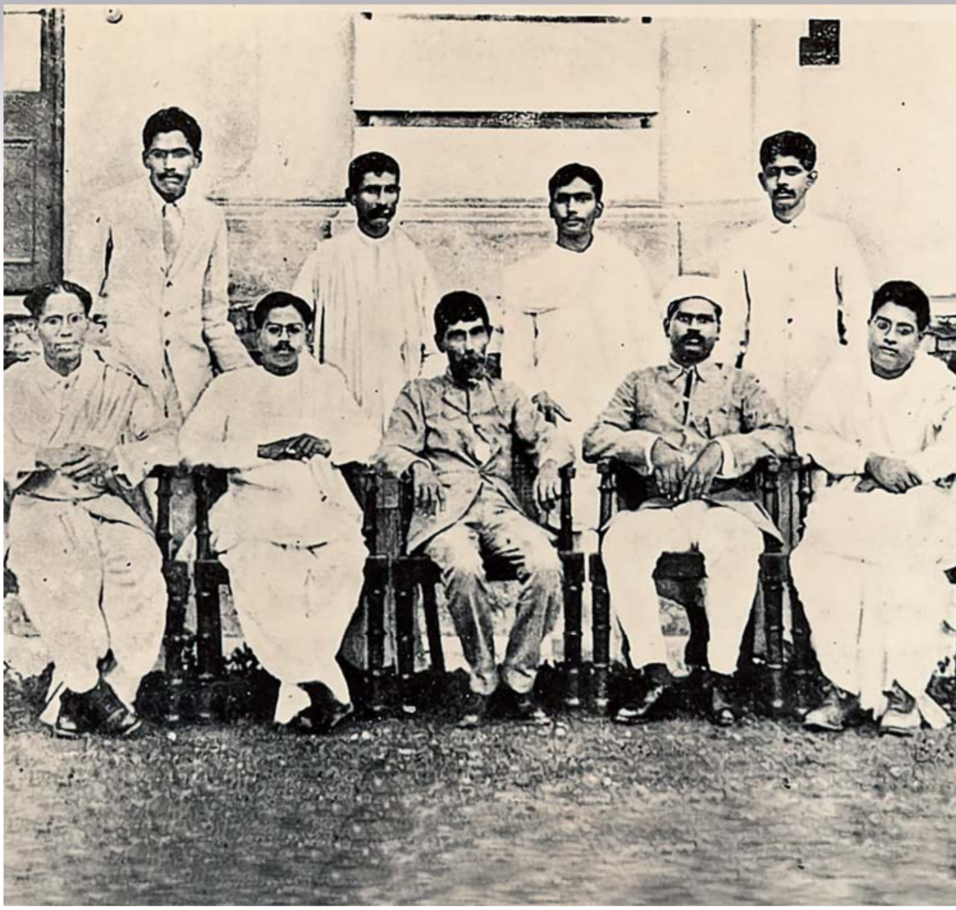

आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र राय अपने शिष्यों के साथ बैठे हुए.

खुले खयालों वाले वह छुआछूत के घोर विरोधी थे। जब राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना की गई तो सन् 1921 से सन् 1931 तक उन्होंने देश के कोने-कोने में जाकर खद्दर का प्रचार किया और साथ ही छुआछूत पर प्रहार कर उसके उन्मूलन के लिए आंदोलन चलाया।

उन दिनों अंग्रेज सरकार बड़े-बड़े कांग्रेसी नेताओं को जेल में डालकर आंदोलन का दमन करती थी। निर्भीक प्रफुल्लचंद्र राय ने शोधकार्य रोककर खुलना, दिनाजपुर, कटक आदि नगरों में जगह-जगह कांग्रेस के सम्मेलनों का सभापतित्व किया। उस समय सभी बड़े नेता जेल में डाल दिए गए थे। जब महात्मा गांधी का असहयोग आंदोलन जोर पकड़ने लगा तो उनकी बढ़ती भागीदारी देखकर किसी ने विज्ञान के बारे में पूछा, उन्होंने तुरंत कहा-'विज्ञान प्रतीक्षा कर सकता है, स्वराज्य नहीं।"

वह सभी से, चाहे वह गरीब हो या अमीर, बड़े प्रेम से मिलते थे। उन्हें सामंतवादी लोगों से नफरत थी। सारा जीवन अविवाहित रहने वाले प्रफुल्लचंद्र राय बड़ी सादगी से जीवन बिताते थे। अपने अंतिम तीस वर्ष उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय के विज्ञान और तकनीकी कॉलेज में बिताए। 2 अगस्त 1941 को उनका 80वां जन्मदिन मनाया गया। उस अवसर पर उसकी विभिन्न क्षेत्रों में सेवाओं का जायजा लिया गया तो लगा कि उनका कार्य असीमित है और उसका आकलन कठिन है। किसी ने उनसे पूछा कि आप इतना परिश्रम कैसे कर लेते हैं तो उन्होंने कहा कि आलसी व्यक्ति अपने दैनिक और आवश्यक कार्यों के लिए भी समय नहीं निकाल पाते हैं। दूसरी ओर व्यस्त आदमी तमाम व्यवस्तता के बावजूद उन सभी कामों के लिए समय निकाल लेते हैं, जिन्हें वह करना चाहते हैं।

सचमुच आजादी की लड़ाई में स्वदेशी का प्रचार करने के लिए उन्होंने दस लाख मील की लंबी यात्रा किया था। वह कई बार यूरोप भी गए, पर उनका वैज्ञानिक कार्य कभी नहीं रुका।

सादगी से जीवन बिताने वाले देशभक्त और निष्कपट डॉ. प्रफुल्लचंद्र राय ने उम्र बढ़ने के साथ और ज्यादा काम करना प्रारंभ किया। वह और काम करना चाहते थे, पर भारतीय रसायन विज्ञान के आचार्य को ज्यादा समय नहीं मिला और 6 जुलाई 1944 को वह दुनिया से चले गए। वह इतिहास में अपना नाम छोड़ गए, जो दुनिया में हमेशा याद किया जाता रहेगा।

सर चंद्रशेखर वेंकटरमन

गीता सुनतकरी

बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में अपनी अनुपम खोज से संसार को चमत्कृत करने वाले और नोबल पुरस्कार जीतकर भारत का गौरव बढ़ाने वाले चंद्रशेखर वेंकट रमन का जन्म कावेरी नदी के तट पर बसे तिरुचिरापल्ली नामक शहर में 7 नवंबर 1888 को हुआ था। उनके पिता का नाम चंद्रशेखर अय्यर था और माता का नाम पार्वती अम्माल था। चंद्रशेखर अय्यर एक शिक्षक थे और भौतिकशास्त्र तथा गणित के विद्वान माने जाते थे। उनकी रुचि संगीत में भी थी।

अपने माता-पिता के द्वितीय पुत्र वेंकट रमन को बचपन से ही अनुकूल वातावरण मिला। उन्होंने भी विज्ञान, संस्कृत, संगीत आदि का अध्ययन किया। बचपन से ही वह हर कक्षा में प्रथम आते रहे। अपने पिता से उन्होंने विज्ञान और गणित पढ़ा। उनके स्कूल प्रिंसिपल उन्हें विशेष रूप से अंग्रेजी पढ़ाया करते थे।

मात्र 13 वर्ष की आयु में उन्होंने मद्रास स्थित प्रेसीडेंसी कॉलेज में प्रवेश लिया। जब वह कक्षा में आये तो सभी वहाँ यह समझे कि यह बालक गलती से स्नातक कक्षा में आ गया है। शिक्षक ने भरी क्लास में उनसे पूछा कि क्या वास्तव में आप बी.ए. के छात्र हैं। छात्र ने पूरे आत्मविश्वास से उत्तर दिया, 'जी हां!' शिक्षक ने उनकी आयु पूछी तो उन्होंने उत्तर दिया, '13 वर्ष!' पूरी कक्षा चकित रह गई।

पर लोग कुछ दिनों बाद ज्यादा चौंक गये जब उन्हें पता चला कि इस बालक ने अद्भुत जानकारियों से पूर्ण एक लेख लिखा है, जिसका शीर्षक था - प्रकाश का बिखराव। यह लेख लंदन की फिलॉसॉफिकल पत्रिका में छप गया है।

1905 में उन्होंने न सिर्फ स्नातक उपाधि पाई बल्कि प्रथम श्रेणी भी हासिल किया। उन्हें स्वर्ण पदक से नवाजा गया। एम.ए. में उन्होंने भौतिक शास्त्र लिया। विज्ञान में उनकी रुचि, कार्य में लगन और उत्साह बढ़ता चला गया। कक्षा में जितना पढ़ाया जाता, वह उससे और ज्यादा पढ़ते थे तथा जहां पर उन्हें शंका होती वहां वह नोट कर लेते और अगले दिन शिक्षक से उसका समाधान करते थे।

युवावस्था से ही वेंकटरमन जर्मन वैज्ञानिक हैम होल्ट्ज़ तथा ब्रिटिश वैज्ञानिक लार्ड रैले से बहुत प्रभावित हुए।

उन दिनों एक वैज्ञानिक के रूप में अपना भविष्य बनाने का चलन नहीं था। वेंकटरमन के बड़े भाई भारतीय ऑडिट व एकाउंट्स सेवा में थे। एम.ए. की परीक्षा में उन्होंने न सिर्फ प्रथम श्रेणी पाई, वरन मद्रास विश्वविद्यालय में सर्वाधिक अंक भी प्राप्त किए। वह आई.ए.ए.एस. की परीक्षा में बैठे और सफल हुए।

मात्र 19 वर्ष की आयु में वह अस्टिटेंट एकाउंटेंट जनरल के पद पर कलकत्ता में नियुक्त हुए। उसी वर्ष उनका विवाह भी हो गया।

एक दिन वह ट्राम में बैठकर ऑफिस से घर आ रहे थे तभी उन्होंने कलकत्ता स्थित 'वैज्ञानिक अध्ययन के लिए भारतीय परिषद" का बोर्ड देखा। वह शीघ्र ही ट्राम से उतरकर उस दफ्तर में पहुंचे। वहां पर डॉ. अमृतलाल सरकार बैठे थे, जो इसके अवैतनिक सचिव थे। इस मकान में बड़े-बड़े कमरे थे और पुराने उपकरण पड़े हुए थे, जो सिर्फ प्रदर्शनी के काम आते थे।

रमन को वातावरण अच्छा लगा और उन्होंने खाली समय में वहां अनुसंधान कार्य करने की अनुमति मांगी, जो तत्काल मिल गई। वेंकटरमन ने शीघ्र ही इस भवन से लगा हुआ मकान किराये पर ले लिया और उसमें रहने लगे। उनके मकान से एक दरवाजा प्रयोगशाला में सीधा खुलता था। दिन में सरकारी काम और शेष समय में अनुसंधान चलने लगा।

1909 में वेंकटरमन का तबादला रंगून हो गया जो ब्रिटिश सरकार के अंतर्गत था, फिर उनका तबादला नागपुर हुआ। दोनों ही जगह उन्होंने अनुसंधान जारी रखा। बीच में 1910 में जब उनके पिता का देहांत हो गया तो वह 6 माह की छुट्टी लेकर घर आए और संस्कार करने के बाद प्रयोग करते रहे। 1911 में वह पुनः कलकत्ता आए और पुरानी प्रयोगशाला में प्रयोग करते रहे। उनका अनुसंधान 1917 तक चलता रहा। उनका अनुसंधान क्षेत्र था - 'ध्वनि के कंपन और वाद्यों का सिद्धांत।" इस दौरान उन्होंने वाद्यों की भौतिकी की इतना गहन अध्ययन कर लिया था कि 1927 में जर्मनी से प्रकाशित 20 खंडों वाले भौतिकी विश्वकोश के आठवें खंड के लिए वाद्यमंत्रों की भौतिकी का लेख रमन से ही लिखवाया था।

जब कलकत्ता विश्वविद्यालय में विज्ञान खंड प्रारंभ हुआ, उस समय कुलपति सर आशुतोष मुखर्जी थे। उन्होंने 1917 में वेंकटरमन को भौतिकीशास्त्र के प्राध्यापक के रूप में काम करने का निमंत्रण दिया। विज्ञानकी सतत सेवा के लिए वेंकटरमन ने ऊंची सरकारी नौकरी छोड़ दी और प्राध्यापक का कम वेतन स्वीकार कर लिया।

भारतीय विज्ञान कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन की अध्यक्षता आशुतोष मुखर्जी ने की। रमन ने इसमें सक्रिय रूप में भाग लिया। बाद में अनेक वर्षों तक वह इसके सचिव के रूप में काम करते रहे।

प्राध्यापक के रूप में रमन ने एक ओर विभिन्न वाद्यमंत्रों की कार्य प्रणाली पर अनुसंधान जारी रखा, वहीं विभिन्न वस्तुओं में प्रकाश के चलने का भी अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि पूरा प्रकाश समूह बिल्कुल सीधा नहीं चलता है। उसका कुछ भाग अपना मार्ग बदलकर बिखर जाता है।

जब अमृतलाल सरकार का निधन हो गया तो उनकी पुरानी प्रयोगशाला का दायित्व भी रमन पर आ गया और वह दोनों जगह अनुसंधान करने व कराने लगे। मेघनाथ साहा और एस. के मित्र जैसे वैज्ञानिक, जो उस समय सामान्य शोधकर्ता थे, उनके संपर्क में आ गए।

इतने व्यस्त कार्यक्रम में रहते हुए भी पूरी तरह तन्मय होकर छात्रों को पढ़ाया करते थे। वह हर विषय का अनेक पुस्तकों से अध्ययन करते और व्याख्यान देते थे। उनके व्याख्यान से नए शोध-कार्यों के लिए उचित वातावरण तैयार होने लगा। पढ़ाते समय वह समय भूल जाते और कई बार 2-3 घंटे तक बोलते रहते थे। इसी प्रकार प्रयोगों में इस कदर भूल जाते थे कि भोजन और नींद की याद उन्हें नहीं रहती थी। वह घरेलू वेशभूषा में ही काम करते रहते थे। वह एक क्षण भी नहीं गंवाते थे।

1921 में लंदन में एक सम्मेलन हुआ जिसमें उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया। यह उनकी प्रथम विदेशयात्रा थी। उनकी भेंट अर्नेस्ट रदरफोर्ड जैसे वैज्ञानिकों से हुई। वहां की चर्चा में उन्होंने प्रतिध्वनि सुनी और उनके मन में इसके बारे में जिज्ञासा उठी।

जब वह वापस पानी के जहाज से आ रहे थे तो उन्होंने जल के नीले रंग को ध्यान से देखा। उनके मस्तिष्क में विचार उठा कि शायद सूर्य की किरणें जब जल में प्रवेश करती हैं तो उसका रंग नीला हो जाता है। कलकत्ता आते ही वह प्रयोगों में जुट गए। एक महीने के अंदर उन्होंने इस विषय पर एक शोध-पत्र तैयार किया और प्रकाशित कराया।

रमन ने दुनिया को बताया कि जब प्रकाश किसी ऐसे माध्यम से गुजरता है जिसमें रेत के कण होते हैं जो वह इधर-उधर फैल जाता है। बिखरने वाले प्रकाश की लंबाई बदल जाती है, जिसमें हमें रंगों का अहसास होता है। रमन ने यह भी बताया कि तरल पदार्थों में प्रकाश का बिखराव बहुत ही कम होता है। दूसरी बात यह कि जब प्रकाश तरल पदार्थ से होकर गुजरता है तो तीव्रता और तरंग लंबाई में कमी आ जाती है।

उन्होंने बिखरे हुए प्रकाश को यंत्र के माध्यम से जांचा और भिन्न-भिन्न तरंग लंबाइयों तथा रंगों से दुनिया को अवगत कराया।

16 मार्च 1928 को साउथ इंडियन साइंस एसोसिएशन के बंगलौर कार्यक्रम में रमन ने अपना आविष्कार लोगों के सामने रखा। उन्होंने

यह भी बताया कि प्रकाश ही लहरों की संख्या में कोई परिवर्तन यदि आता है तो इसका कारण वह पदार्थ है जिससे होकर किरणें गुजरती हैं। इन किरणों के बिखराव से उस पदार्थ की संरचना के बारे में भी पता लगाया जा सकता है।

वेंकटरमन जहां एक ओर नए अनुसंधान कर रहे थे वहीं वह पुराने अनुसंधानों में संशोधन करके उन्हें पूर्णता भी प्रदान करते हरे। 1928 में ही उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि के रूप में रूस की यात्रा की और रशियन अकादमी ऑफ साइंस के अधिवेशन में भाग लिया। इसके बाद वहीं से वह जर्मनी, स्विटरलैंड और इटली भी गए।

1930 में उन्हें विश्व का सबसे बड़ा पुरस्कार नोबल मिला, जो उस समय तक विज्ञान के लिए किसी भारतीय तो क्या किसी एशियाई व्यक्ति को भी नहीं मिला था। इससे पूर्व 1922 में कलकत्ता विश्वविद्यालय ने उन्हें डी.एस.सी. की डिग्री प्रदान की और 1924 में रॉयल सोसाइटी ने अपना फेलो निर्वाचित किया था। 1928 में ही भारतीय गणित परिषद ने अपना फेलो बनाया था और भारतीय विज्ञान कांग्रेन ने सभापति। 1929 में ब्रिटिश सरकार ने उन्हें सर की उपाधि प्रदान की थी।

इतने सारे सम्मानों ओर उपाधियों से अविचलित रमन स्वीडन से 8 हजार पौंड की राशि लेकर आए और अपने अनुसंधान में जुट गए। रमन का आविष्कार उनके नाम पर 'रमन इफेक्ट' के नाम से लोकप्रिय हो गया और इसके बाद 12 वर्षों में उन्होंने उस पर लगभग 1800 शोध-लेख लिखे जो प्रकाशित हुए। इसके आधार पर 2500 रासायनिक पदार्थों का अध्ययन किया गया। रमन इफेक्ट को तीसरे दशक की महानतम खोज मानी गई।

वेंकटरमन जहां अपनी वैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उपकरण स्वयं बना लेते थे, वहीं भारतीयों के शोध-पत्रों को छपावाने के लिए उन्होंने 'दि इंडियान जनरल ऑफ फिजिक्स' का प्रकाशन 1926 से प्रारंभ किया।

नोबल पुरस्कार मिलने के बाद भी वह रुके नहीं और आविष्कार करते गए। उनके अन्य आविष्कार चुंबकीय शक्ति, एक्स-रे किरणों आदि से संबंधित हैं।

1923 में भारत सरकार ने वेंकटरमन को भारतीय विज्ञान संस्थान बंगलोर का निदेशक नियुक्त किया। इस पद पर वह दीर्घ काल तक रहे और इस संस्थान को आगे बढ़ाते रहे। 1948 में 'रमन रिसर्च इंस्टीट्यूट' की स्थापना बंगलौर में हुई, जिसके वह पहले निदेशक बने।

वेंकटरमन ने देश में अनेक स्वतंत्र अन्वेषण-शालाएं, विश्वविद्यालय और वैज्ञानिक संस्थाएं सीापित कराने में योगदान किया। 1934 में उन्होंने भारतीय विज्ञान अकादमी की स्थापना कराई और 'करेंट साइंस' नामक विज्ञान पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया।

अत्यंत परिश्रमी वेंकटरमन प्रातः जल्दी उठकर घूमने जाया करते थे। प्रभातकाल में, आकाश की छाया में, ऊंचे-ऊंचे हरे वृक्षों की मनोहारी दृश्य उन्हें अच्छा लगता था। 6 बजे वह अपने कक्ष में पहुंच जाते थे जहां वह सुबह 9 बजे तक शोधकार्य काते और छात्रों के साथ शोध-पत्रों पर चर्चा करते। दस बजे वह डाइरेक्टर के रूप में अपने कार्यकाल में पहुंच जाते थे और शाम को वहीं से प्रयोगशाला पहुंचते, जहां साढ़े आठ बजे तक शोध-कार्यों में लगे रहते। वह प्रति सप्ताह दो-तीन सेमीनारों का आयोजन करवाते और इनमें उनके सहयोगी शोध-कार्यों पर चर्चा करते थे।

इत्तफाक से युवावस्था में वेंकटरमन अत्यंत दुर्बल थे। अन्य कारणों के अलावा यह भी एक कारण था कि जिसकी वजह से वह विदेश पढ़ाई के लिए न जा सके। जब वह ऐसे युवकों को देखते जो पढ़ाई में अच्छे पर शरीर से कमजोर होते तो उन्हें सलाह देते थे कि देखो, शोध-कार्य बड़ा विचित्र होता है। इसमें जब सफलता मिलती है, तो बड़ी प्रसन्नता होती है पर जब असफलता हाथ लगती है तो बहुत निराशा हाथ लगती है। खुशी और निराशा दोनों के लिए शरीर का स्वस्थ होना जरूरी है। इसलिए पढ़ाई के अलावा खेलकूद तथा व्यायाम के जरिये शरीर को स्वस्थ भी बनाओ।

रमन द्वारा स्थापित भारतीय विज्ञान अकादमी की गतिविधियों के विस्तार के लिए मैसूर सरकार ने चार एकड़ जमीन उपलब्ध करा दी। उनकी इच्छा थी कि ऐसा वैज्ञानिक शोध-केंद्र किया जाए जो भारत की प्राचीन गौरवशाली परंपरा के अनुकूल हो। अंततः बंगलौर के पास शोध-केंद्र खुला और रमन ने अपनी सारी व्यक्तिगत संपत्ति इस केंद्र के लिए दान कर दी। इस केंद्र का नाम 'रमन रिसर्च इंस्टीट्यूट' रखा गया। उन्होंने इसके संचालक का कार्य भार संभाल लिया। उस समय उनकी आयु 60 वर्ष थी।

उन्होंने अपने इस अद्वितीय संस्थान के चारों ओर बगीचा और बड़े-बड़े वृक्ष लगवाए। वह कहते थे वृद्धावस्था में व्यक्ति को वन जान चाहिए पर मैंने वन को ही अपने पास बुला लिया। उन्होंने यहां पर ध्वनि, प्रकाश, चट्टानों, पक्षियों, कीड़ों, तितलियों, रत्नों, समुद्री, सीपों, फूलों,

वातावरण, मौसम, दृष्टि एवं श्रवण-इंद्रियों से संबंधित शोध किए। इस प्रकार उन्होंने विज्ञान की लगभग हर विधा में शोध किया।

डॉ. रमन विज्ञान का प्रयोग मानव-सुख व शांति के लिए ही करना चाहते थे। उन्होंने कभी युद्ध-संबंधी प्रयोग नहीं किया। उनके शांतिपूर्ण कार्यों के लिए उन्हें 1958 में लेनिन शांति पुरस्कार से नवाजा गया।

उन्हें विचित्र चीजों के संग्रह का भी शौक था। उन्होंने विभिन्न बहुमूल्य पत्थरों का संग्रह किया था। इनमें सैकडों ऐसे पत्थर थे जो प्रकाश से पिघल जाते थे। ज्वालामुखी में निकलने वाले लावा से मिले पत्थर, हीरे, लालमणि, नीलमणि आदि उनके संग्रह में शामिल थे। अनेक जगमगाते पत्थरों को डार्करूम में रखा गया था, जिन्हें देखकर लोग चौंक जाते थे। इन पत्थरों में लघु अदृश्य किरणों को सोखने और उन्हें दीर्घ दृश्य किरणों के रूप में परिवर्तित करने की भी क्षमता होती है।

उन्हें फूलों से भी विशेष प्रेम था और वह संस्थान में तरह-तरह के फूल लगवाया करते थे। एक बार जब वह हीरे खरीदने गए तो उन्हें पेरिस की एक दूकान पर नीले पंखों वाली तितलियां दिखाई दीं। उन्होंने उन्हें खरीद लिया।

वह स्वाभाव के अत्यंत कोमल थे और उनका जीवन अत्यंत सादगीपूर्ण था। वह कोट-पैंट, टाई अवश्य पहनते थे, पर साथ में दक्षिण भारतीय पद्धति की पगड़ी भी अवश्य धारण करते थे। मानव-सेवा में उन्हें अनुपम आनंद मिलता था। एक बार वह रंगून से नागपुर लौटे तो वहां प्लेग फैल गया था। उन्होंने बिलकुल परवाह न करते हुए अपने घर के सामने तंबू लगवाए और मरीजों की खुद देखभाल की तथा दवा का इंतजाम किया।

शीघ्रता से काम करने वाले वेंकट रमन विज्ञान के साथ-साथ अर्थशास्त्र, राजनीति, इतिहास, संस्कृत आदि के भी मर्मज्ञ थे। वह भारतीय भाषाओं के अलावा यूरोपीय भाषाओं के भी ज्ञाता थे, साथ ही वीणावादन में अत्यंत प्रवीण थे।

अपनी अकादमी के वार्षिक अधिवेशनों में वह अपनी नवीनतम खोजों के बारे में लोगों को बताते थे। 1967 में 79 वर्ष की आयु में उन्होंने वायु रूपी परकोटे में पृथ्वी के भ्रमण के प्रभावों की चर्चा की। अगले वर्ष 80 की आयु में उन्होंने दृष्टि के रचनाशास्त्र का सिद्धांत प्रस्तुत किया।

वह उत्कृष्ट वक्ता थे। वह अपने गंभीर आविष्कारों का ब्यौरा आम जनता को विनोदपूर्ण शैली में और सरल भाषा में देते थे। संसार की प्रतिष्ठि संस्थाएं उन्हें अपनी सदस्यता, फेलोशिप आदि प्रदान करने के लिए लालायित रहती थीं। 1954 में भारत सरकार ने उन्हें अपने सर्वोच्च सम्मान 'भारतरत्न' से नवाजा।

वह समुद्र के बारे में और अधिक अनुसंधान करना चाहते थे और इसके लिए स्वतंत्र जहाज प्राप्त करना चाहते थे। वह यह भी कहते थे कि भारत ने अपनी स्वतंत्रता इसलिए खोई कि यहां समुद्र-यात्रा वर्जित हो गई।

वह यह भी चाहते थे कि भारतीय वैज्ञानिक विदेश जाकर शोध-कार्य करें और ख्याति अर्जित करें। अपने देश में इस दिशा में उपकरणों व अन्य सुविधाओं के अभाव का उन्हें एहसास था। वह कहते थे कि अगर ईस्ट इंडिया कंपनी के लोगों ने भारत आकर अपना राज कायम कर लिया तो क्या भारतीय वैज्ञानिक विदेश जाकर अपनी धाक नहीं जमा सकते।

विज्ञान को ही ईश्वर मानने वाले और हर नई खोज को ईश्वर का प्रमाण मानने वाले रमन गांधीजी से अत्यंत प्रभावित थे और हर वर्ष गांधी जयंती पर अत्यंत रोचक भाषण दिया करते थे। जब 1970 में वह अपनी आयु का 82वां वर्ष पूरा कर रहे थे। तब उन्होंने अपनी अकादमी के सदस्यों का सात दिवसीय सम्मेलन आयोजित किया। इस अवसर पर युवा वैज्ञानिकों को उन्होंने विभिन्न विषयों पर शोध-पत्र प्रस्तुत करने के लिए प्रोत्साहित किया।

इसके बाद उन्हें दिल का हलका दौरा पड़ा। शीघ्र इलाज होने से वह ठीक भी हो गए और फिर काम में जुट गए।

बिना किसी प्रोत्साहन के विज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश करने वाले, ध्वनि और प्रकाश के क्षेत्र में तमाम रहस्यों का परदाफाश करने वाले, अपनी अद्वितीय उपलब्धियों और आत्मसम्मान से विश्व में भारत का गौरवपूर्ण स्थान बनानेवाले, अनेक शोध-संस्थानों की स्थापना करने वाले और वैज्ञानिक पत्रिकाओं का प्रकाशन करने वाले, वैज्ञानिकों के प्रोत्साहनकर्ता, भारतमाता के महान सपूत चंद्रशेखर वेंकटरमन ने 21 नवंबर 1970 को अपनी इहलीला समाप्त की।

उनके बाद उनके कनिष्ठ पुत्र राधाकृष्णन रमन रिसर्च इंस्टीट्यूट के संचालक बने।

एमडीएल उत्पादन

वाईस एडमिरल डीएम देशपांडे एवीएसएम, वीएसएम, सीडब्लूपी एंड ए का एमडीएल में स्वागत करते हुए सीएमडी कमोडोर राकेश आनन्द

दिनांक 19 मई 2018 को यार्ड-12706 कील लेइंग के उपरांत यूनिट के सामने एमडीएल और नौसेना अधिकारियों, कर्मचारियों का सामूहिक चित्र

एमडीएल के सम्मेलन कक्ष में 21 सितम्बर 2017 को कलवरी के डी 448 पर नौसेना प्रतिनिधि और एमडीएल प्रबंधन के बीच हस्ताक्षर

हस्ताक्षर के उपरांत नौसेना प्रतिनिधि के साथ चर्चा करते हुए अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक कमोडोर राकेश आनन्द तथा अन्य प्रबंधन प्रतिनिधि

28 दिसंबर 2017 को पी-17ए यार्ड 12651 का कील लेइंग समारोह, मुख्य अतिथि वाईस एडमिरल डी एम देशपांडे एवीएसएम, वीएसएम, सीडब्लूपी एंड ए साथ में सीएमडी, निदेशक वित्त, सीवीओ

कील लेईंग पश्चात यूनिट के सामने उपस्थित निदेशकगण एवं अन्य वरिष्ठ अधिकारी

पनडुब्बी कमीशनिंग समारोह

दिनांक 14 दिसंबर 2017 कलवरी कमीशनिंग के अवसर पर परेड का निरीक्षण करते हुए माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी

प्रधानमंत्री के साथ मंच पर बैठी हुई रक्षा मंत्री श्रीमती निर्मला सीतारमन, राज्यपाल, मुख्यमंत्री महाराष्ट्र, नौसेना प्रमुख तथा एमडीएल के सीएमडी एवं नौसेना के अधिकारी

समारोह को संबोधित करते हुए माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी साथ बैठी हुई रक्षा मंत्री, रक्षा राज्य मंत्री डॉ सुभाष भामरे, नौसेना प्रमुख तथा एमडीएल के सीएमडी

पनडुब्बी के भीतर एमडीएल का मोमेंटों प्रधानमंत्री को प्रदान करते हुए सीएमडी और गणमान्य अतिथि

31 जनवरी 2018 को तीसरी पनडुब्बी आईएनएस 'करंज'' के जलावरण पर नौसेना प्रमुख एडमिरल सुनील लांबा का स्वागत करते अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक कमोडोर राकेश आनन्द

समारोह में संबोधन भाषण करते हुए अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक, कमोडोर राकेश आनन्द, मंच पर बैठे हुए निदेशकगण एवं गणमान्य अतिथि

गणमान्य अतिथियों का एमडीएल दौरा

सेनेगल राजदूत को पोत पर चित्र के माध्यम से ब्योरा समझाते हुए श्री राजीव शेन्डे मप्र पी-15बी वाईस एडमिरल ए के सक्सेना निदेशक (जहाज निर्माण तथा डब्लूओटी प्रमुख)

सम्मेलन कक्ष में सेनेगल अतिथि को मोमेंटों प्रदान करते हुए सीएमडी तथा उपस्थित वरिष्ठ अधिकारी गण

रक्षा की स्थाई समिति सदस्यों का स्वागत करते हुए अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक कमोडोर राकेश आनन्द

रक्षा की स्थाई समिति का एमडीएल दौरा समिति सदस्यों से चर्चा करते अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक कमोडोर राकेश आनन्द

26 अप्रैल 2018 में इजराईल राष्ट्रीय रक्षा विद्यालय प्रतिनिधियों का एमडीएल दौरा, सम्मेलन कक्ष में प्रतिनिधियों से चर्चा करते हुए सीएमडी एवं निदेशकगण तथा वरिष्ठ अधिकारी

इजराईली प्रतिनिधि को मोमेंटों प्रदान करते हुए सीएमडी साथ निदेशकगण

दिनांक 22 जून 2018 केन्या की रक्षा सचिव सुश्री रायचेले रोमाओ आउर का स्वागत करते हुए सीएमडी कमोडोर राकेश आनन्द तथा कमोडोर टीवी थामस, नि (सयो एवं का)

सम्मेलन कक्ष में केन्या प्रतिनिधियों के साथ चर्चा करते हुए सीएमडी और अन्य निदेशकगण

फीलीपाईन्स प्रतिनिधियों का एमडीएल में स्वागत करते हुए कमोडोर टीवी थामस, निदेशक (सा यो एवं का)

सम्मेलन कक्ष में प्रतिनिधि को मोमेंटों प्रदान करते हुए सीएमडी तथा निदेशक गण

रक्षा सचिव डॉ अजय कुमार का एमडीएल में स्वागत करते कमोडोर राकेश आनन्द सीएमडी

दिनांक 14 मई 2018 को निदेशक गण से परिचय कराते सीएमडी

नाइजेरियन नौसेना प्रमुख वाईस एडमिरल इबोक इटे एक्वी इबास का एमडीएल में स्वागत करते हुए सीएमडी कमोडोर राकेश आनन्द साथ में श्री एम वी कारेकर

नाइजेरियन नौसेना प्रमुख वाईस एडमिरल इबोक इटे एक्वी इबास को पूर्वखंड में पनडुब्बी संबंधी जानकारी देते हुए कमोडोर राकेश आनन्द, अप्रनि के साथ श्री एचवी कारेकर, कानि (पूर्व खंड)

सीपीआरएम

दिनांक 26 से 27 सितंबर 2018 तक पी75, पी15ए, पी15बी एवं प17ए का सीपीआरएम

विशाखापत्तनम पोत पर एसपीआरएम के लिए उपस्थित अधिकारीगण के साथ एमडीएल के सीएमडी, वरिष्ठ अधिकारीगण तथा कर्मचारी

वाइस एडमिरल डी एम देशपांडे, एवीएसएम, वीएसएम, सीडबल्यू एंड ए के साथ सीपीएएम में एमडीएल निदेशक मण्डल एवं वरिष्ठ अधिकारीगण

वाईस एडमिरल डीएम देशपांडे को मोमेंटों प्रदान करते हुए सीएमडी कमोडोर राकेश आनन्द

सीएसआर कार्यक्रम

केरल में बाढ़ राहत हेतु खाद्य सामग्री आपूर्ति के लिए एमडीएल द्वारा 07 सितंबर 2018 को एक ट्रक भेजी गई

केरल बाढ़ राहत हेतु खाद्य सामग्री आपूर्ति सामान से लदी ट्रक के साथ एमडीएल के अधिकारीगण

दिनांक 06 जून 2018 को सीएसआर के अंतर्गत पर्यावरण दिवस पर वृक्षारोपण कार्यक्रम

पर्यावरण दिवस के अवसर पर पर्यावरण संबंधी जागरुकता हेतु लघु नाटिका की प्रस्तुति

पर्यावरण दिवस के अवसर पर वृक्षारोपण करते हुए निदेशक (सयो एवं का) के साथ एमडीएल के अन्य अधिकारी गण।

दिनांक 19 सितम्बर 2018 को नई दिल्ली में एमडीएल सीएसआर के अंतर्गत खराडे ग्राम पंचायत के संपूर्ण विकास हेतु गाँव गोद लेने पर स्कोच सीएसआर सिल्वर पुरस्कार प्रदान किया गया और स्कोच द्वारा भारत में टॉप सीएसआर परियोजना में क्वालीफाई होने पर आर्डर ऑफ़ मेरिट प्राप्त करते हुए डॉ ज एम जांगीर एम प्र(स्वदेशीकरण)

राजभाषा बैठक और हिन्दी दिवस समारोह

दिनांक 28 सितंबर 2018 को तिमाही राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक में अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक के साथ बैठे अन्य निदेशकगण एवं उच्च अधिकारी एवं राजभाषा अधिकारी

तिमाही राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक में अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक हिन्दी की प्रगति पर चर्चा करते हुए

14 सितंबर हिन्दी दिवस के अवसर श्री एस के मल्लिक, महाप्रबंधक (मा.सं) एमडीसी में स्वागत भाषण देते हुए।

हिन्दी दिवस के अवसर पर एमडीसी में उपस्थित अधिकारीगण

14 सितंबर को हिन्दी दिवस पर कंपनी के मुख्य अतिथि कमोडोर टी वी थॉमस, नि (सयो एवं का) मुख्य वक्ता मुंबई विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ करुणाशंकर उपाध्याय हिन्दी की महत्ता और वैशविक स्तर पर हिन्दी का प्रचार- प्रसार एवं उपयोग पर चर्चा करते हुए।

हिन्दी दिवस समारोह में शामिल एमडीएल के वरिष्ठ अधिकारीगण

मेघनाथ साहा

झाहीद माझगांवकर

उच्च कोटि के वैज्ञानिक मेघनाथ साहा का जन्म 6 अक्टूबर 1893 के पूर्वी बंगाल (वर्तमान बांग्लादेश) के ढाका जिले में, कनसाई नदी के किनारे शेवड़ाताली नामक छोटे-से गांव में हुआ था। उनके पिता जगन्नाथ साहा बहुत गरीब थे और गांव में ही खिलौनों और छोटी-मोटी चीजों की दुकान चलाते थे। उनके आठ बच्चे थे। मेघनाथ उनकी पांचवीं संतान थे। माता भुवनेश्वरी देवी एक कुशल महिला थीं और बच्चों को अभावों से दूर रखने का यत्न करती थीं। दरिद्रता में समय काट रहे इस परिवार में बच्चों के लिए उच्च शिक्षा तो क्या, सामान्य शिक्षा भी असंभव लग रही थी।

बालक मेघनाथ ने अपने गांव की प्राथमिक पाठशाला में जाना प्रारंभ कर दिया। वह सुबह-शाम पिता के काम में भी हाथ बंटाते थे। नंगे पैर सकूल जाने वाले मेघनाथ ने बचपन में ही अपने शिक्षकों को अपनी बुद्धि और श्रम से आकर्षित करना आरंभ कर दिया। वह जो भी पढ़ते, याद कर लेते और परीक्षा में पूरे जिले में अव्वल आते थे।

उनकी प्रतिभा से प्रेरित होकर उन्हें उनके गांव से 7 मील दूर सिमुलिया गांव में मिडिल स्कूल में भर्ती कराया गयाथा। उनके एक परिचित व्यक्ति डॉ. दास ने मेघनाथ की अनेक प्रकार से सहायता की। मेघनाथ उनके घर में रहते, घरेलू काम, गाय की देखभाल आदि करते और पढ़ाई भी करते।

यहां पर भी मेघनाथ ने पढ़ाई में अनेक चमत्कार दिखलाए। गणित में वह अद्वितीय थे। सन् 1905 की मिडिल परीक्षा में वह पूरे ढाका जिले में प्रथम आए।

13 वर्ष से भी कम आयु में वह ढाका कालेजियट में भर्ती हुए। सरकारी छात्रवृत्ति से आर्थिक समस्या हल हो गई। उनकी फीस भी माफ हो गई। पढ़ाई आगे बढ़ने लगी।

देश की स्वतंत्रता के लिए चल रहे आंदोलन ने जोर पकड़ लिय और अंगेज सरकार ने बंगाल को टुक़ड़ों में बांट दिया। क्या जनता और क्या छात्र, सभी आंदोलन में कूद पड़े। मेघनाथ ने न घर की गरीबी की परवाह की और न छात्रवृत्ति की। जब गवर्नर स्कूल-कॉलेजों के दौरे पर आए तो दूसरे छात्रों की तरह मेघनाथ भी बहिष्कार में शामिल हुए और इसके कारण छात्रवृत्ति से हाथ धो बैठ और स्कूल से भी निकाल दिए गए।

परन्तु भाग्य ने उनका साथ नहीं छोड़ा और एक निजी संस्था ने उनकी मदद की। वह दूसरे स्कूल में भर्ती हुए और उन्हें छात्रवृत्ति भी मिली। उनके भाई जयनाथ ने भी थोड़ी मदद की और शिक्षा की गाड़ी चल निकली।

सामान्य पढ़ाई के अलावा मेघनाथ ने इतिहास, संस्कृति, विज्ञान, ज्योतिष आदि का भी अध्ययन किया और साथ में विभिन्न धर्मों और उनके धर्मग्रंथों का भी अध्ययन किया। बाइबिल का उनका ज्ञान इतना उत्कृष्ट था कि वह बैप्टिस्ट मिशन द्वारा आयोजित अखिल बंग बाइबिल प्रतियोगिता में प्रथम आए और बाइबिल की सजिल्द प्रति सहित सौ रुपए का पुरस्कार भी जीता।

प्रारंभ से ही अध्यापकों को मुग्ध कर देने वाले मेघनाथ ने 1909 में एंट्रेंस (मैट्रिक) की परीक्षा में पूरे पूर्वी बंगाल में प्रथम स्थान प्राप्त किया। अंग्रेजी, बंगला व संस्कृत में उन्हें पूरे पूर्वी बंगाल में सर्वाधिक अंक मिले। गणित में भी अव्वल थे।

आगे की पढ़ाई के लिए वह ढाका कॉलेज में आए और 1911 में उन्होंने इंटरमीडिएट की परीक्षा पास की। गणित और रसायन में उन्हें सबसे अधिक अंक मिले। उन्होंने जर्मन भाषा का भी अध्ययन किया। उनके एक गणित के प्रोफेसर के.पी. बसु तथा प्रिंसिपल आर्चीबाल्ड उनका तरह-तरह से हौसला बढ़ाते रहते थे।

मेघनाथ साहा प्रेसीडेंसी कॉलेज, कलकत्ता में बी.एस.सी. में दाखिल हुए। यहां उन्हें प्रमुख वैज्ञानिकों जे.सी. बसु, पी.सी. राय आदि का वरदहस्त मिला। प्रशांत चंद्र महालनबीस उनके वरिष्ठ थे, एस.एन.बोस सहपाठी थे और सुभाषचंद्र बोस उनके कनिष्ठ थे।

ऐसे अच्छे वातावरण में मेघनाथ साहा ने 1913 में बी.एस.सी. आनर्स में प्रथम श्रेणी प्राप्त करते हुए द्वितीय स्थान पाया। सन् 1915 में वह गणित में एस.एस.सी. प्रथम श्रेणी से पास किये।

गाँव में परिवार की स्थिति खराब चल रही थी। मेघनाथ ने नौकरी पाने का प्रयास किया। उनके संबंध सुभाषचंद्र बोस जैसे क्रांतिकारियों से थे। इस कारण सरकार ने उन्हें भारतीय वित्त सेवा में नहीं बैठने दिया। अब वह कलकत्ता में रहकर ट्यूशन पढ़ाने लगे। बड़ी कठिनाई ने उन्होंने एक साल बिताया।

1916 में उपकुलपति प्रो. आशुतोष मुखर्जी ने उन्हें गणित विभाग में प्रवक्ता नियुक्त किया। दुर्भाग्यवश उनका विभागाध्यक्ष गणेश प्रसाद से विवाद हो गया और उन्हें भौतिकी विभाग में भेज दिया गया। उनका भौतिकी में अध्ययन बी.एस.सी. तक ही था पर वह बड़ी कुशलता से एम.एस-सी. के छात्रों को पढ़ा लेते थे।

अब वह भौतिकी के अनुसंधान में भी जुट गए। जर्मन ज्ञान की सहायता से उन्हें आइंस्टाइन के सिद्धांतों का अध्ययन किया और एस.एन. बोस के साथ मिलकर सापेक्षता सिद्धांत का अंग्रेजी में रूपांतर भी किया। 1919 में इसे कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित भी किया गया।

जर्मन ज्ञान के सहारे साहा ने अनेक प्रसिद्ध जर्मन वैज्ञानिकों के लेखों और अनुसंधानों का अध्ययन कर डाला। 1917 में उन्होंने मैक्सवेल के कार्य पर आधारित अपना पहला शोध-लेख लिखा जो विज्ञान की उस समय की सर्वोच्च पत्रिका 'फिलॉसोफिलकल मैगजीन" में प्रकाशित हुआ।

इसके बाद अनुसंधान के क्षेत्र में वह आगे बढ़ते ही चले गए। उन्होंने एक उपकरण तैयार किया जिससे यह दिखाई देता था कि प्रकाश जब किसी सूक्ष्म वस्तु पर पड़ता है तो उस वस्तु पर दबाव पड़ता है। उन्होंने इस दबाव को नापकर भी दिखला दिया और प्रकाश-दाब सिद्धांत का प्रतिपादन कर डाला। इस कार्य ने और विकिरण-दाब के विद्युत चुंबकीय सिद्धांत पर लिखे शोध-प्रबंध ने उन्हें कलकत्ता विशविद्यालय से मात्र 25 वर्ष की आयु में डी.एस. सी. की डिग्री हासिल कराई।

मेहनत से उन्होंने प्रेमचंद रायचंद छात्रवृत्ति भी हासिल कर ली। 1919 में यूरोप रवाना हुए। जिस जहाज से वह जा रहे थे, उस पर वरिष्ठ भारतीय रसायनशास्त्री प्रफुल्ल चंद्र राय भी थे। दोनों में गहन चर्चा हुई। मेघनाथ साहा यूरोप में अनेक वैज्ञानिकों से मिले और उन्होंने विभिन्न विषयों पर गंभीर चर्चा की।

कलकत्ता विश्वविद्यालय के उपकुलपति आशुतोष मुखर्जी ने उन्हें तार भेजा कि वह वापस आकर अध्यापन कार्य प्रारंभ करें। देशभक्त साहा वापस आ गए और कलकत्ता विश्वविद्यालय में भौतिकी के प्राध्यापक के रूप में पढ़ाने लगे। साथ में वह अनुसंधान में भी जुट गए।

डॉ मेघनाथ साहा कलकाता विश्वविद्यालय के अन्य प्रोफेसरों के साथ

उन दिनों उन्हें अलीगढ़ और इलाहाबाद विश्वविद्यालय से भी पढ़ाने का निमंत्रण आया। एक ओर बनारस विश्वविद्यालय में शांतिस्वरूप

भटनागर बुला रहे थे तो दूसरी ओर, भारतीय मौसम विज्ञान संस्थान के निदेशक सरकारी पद लेने का आग्रह कर रहे थे, परन्तु साहा अपने कार्य में ही लगे रहे।

1923 में साह ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय के भौतिक विज्ञान विभाग के अध्यक्ष का पद संभाल लिया। प्रारंभ में उन्हें वहां कम उपलब्ध पुस्तकों, वर्कशाप में मशीनों की कमी, बिजली का अभाव, उपकरणों की कमी, गर्म मौसम आदि का सामना करना पड़ा पर वह डट रहे और वहां के भौतिक विज्ञान विभाग को आगे बढ़ाते रहे। 1927 में जब वह रॉयल सोसायटी के फेलो निर्वाचित हुए तो यूपी के गवर्नर ने उन्हें बधाई संदेश भेजा। उन्होंने अनुसंधान के लिए धन और उपकरणों की कमी के बारे में बताया। उन्हें सरकार और रॉयल सोसाइटी दोनों से आर्थिक सहायता मिली, जिसका उपयोग उन्होंने आयनमंडल पर अनुसंधान करने में किया।

मेघनाथ साहा ने इलाहाबाद में वैज्ञानिकों का एक दल तैयार किय। वह चाहते थे कि वैज्ञानिकों को आपसी मेलजोल के लिए अधिक से अधिक अवसर मिलने चाहिए। इसके लिए उन्होंने संयुक्त प्रांत (वर्तमान उत्तर प्रदेश) में साइंस अकादमी की नींव रखी।

1938 में वह कलकत्ता वापस लौट आए और कलकत्ता विश्वविद्यालय में प्राध्यामक के रूप में पढ़ाने लगे। इस समय तक दुनिया को एटम की जानकारी हो चुकी थी। साहा ने अपने अनुसंधान को इस दिशा में मोड़ दिया। उनके अनुरोध पर जवाहरलाल नेहरू, कलकत्ता विश्वविद्यालय तथा उद्योगपतियों जैसे टाटा ने उनकी सहायता की और नाभिकीय भौतिकी की दिशा में महत्त्वपूर्ण अनुसंधान कार्य प्रारंभ हुआ।

1944 में अन्य भारतीय वैज्ञानिकों के साथ साहा रूस व अमेरिका की यात्रा पर भी गए। उनका उद्देश्य साइक्लोट्रॉन की स्थापना करना था।

दरअसल साइक्लोट्रॉन से रेडियो-कैलशियम और रेडियो फास्फोरस जैसे कृत्रिम रेडियोधर्मी तत्त्व बनाए जा सकते हैं। इनका उपयोग चिकित्सा में होता है। इंडियन स्कूल ऑफ ट्रॉ पिकल मेडिसिन् ने अपने रोगियों को उनकी प्रयोगशाला में भेजना प्रारंभ कर दिया। जब इस कार्य के लिए सूक्ष्मदर्शी की आवश्यकता पड़ी तो तत्कालीन केंद्र सरकार और बंगाल सरकार ने तथा कई उद्योगपतियो ने धन दान में दिया और साहा ने एक लाख रुपये का सूक्ष्मदर्शी अमेरिका में तैयार कराया। सन् 1945 में डॉ. दासगुप्ता नामक वैज्ञानिक को प्रशिक्षित भी कराया।

डॉ. मेघनाथ साहा के प्रयासों ने धीरे-धीरे रंग लाना प्रारंभ किया और कलकत्ता विश्वविद्यालय के यूनिवर्सिटी कॉलेज ऑफ साइंस के परिसर में इंस्टीट्यूट ऑफ न्यूक्लियर फिजिक्स की स्थापना हो गई। 11 जनवरी 1950 को इसका उद्घाटना नोबल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिक आइरीन जोलियो क्यूरी ने किया जो सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक क्यूरी दंपती की पुत्री थीं।

एक ओर वह वैज्ञानिक प्रगति में जुटे रहे और दूसरी ओर, जनसेवा का कोई भी अवसर नहीं छोड़ते थे। 1943 में दामोदर नदी में भारी बाढ़ आई जिससे हजारों व्यक्ति तबाह हो गए और जानमाल का भारी नुकसान हुआ। वह इस प्रकार के हादसे से बचाव का उपाय ढूंढ़ने में जुट गए और 'माडर्न रिव्यु" सहित अनेक पत्र-पत्रिकाओं में बीसियों लेख लिखे, जिसमें उन्होंने बताया कि अमेरिका, रूस, जर्मनी जैसे विकसित देशों में ऐसी समस्याओं का हल कैसे निकाला गया था।

उन्हें नदियों से बड़ा प्रेम था। वह बहुत अच्छे तैराक भी थे। एक वैज्ञानिक के रूप में इन नदियों को काबू में लाने के लिए उन्होंने अनेक योजनाएं बनाईं। वह नदियों और समुद्र से संबंधित समस्याओं के हल के लिए भारत में कई प्रयोगशालाएं कायम कराना चाहते थे। उनके लेखों के कारण ही 1942 में दामोदर घाटी परियोजना पर विचार प्रारंभ हुआ।

डॉ. साहा को गणित से प्रेम बचपन से था। उन्होंने खगोलशास्त्र का भी गहरा अध्ययन किया था। उन्होंने विश्व के विभिन्न धर्मों के ग्रंथों का अध्ययन किया। उन्होंने मिश्र में आरंभ हुए खगोल विज्ञान का भी अध्ययन किया जिसके अनुसार पहले 30 दिन का महीना और 12 महीने का साल होता था। बाद में लोगों ने देखा कि सूर्य अपनी पुरानी स्थिति पर नहीं पहुंचता है तो संशोधन करके 365 दिन का वर्ष घोषित किया गया। बाद में एक चौथाई दिन और जोड़ा गया और चौथे वर्ष फरवरी में 29 दिन किए गए, हालांकि इसमें भी कुछ त्रुटि है।

डॉ. साहा ने विभिन्न देशों के प्राचीन और आधुनिक कैलेंडरों का अध्ययन किया। वह लगभग 20 साल तक त्रुटिहीन कैलेंडर बनाने में लगे रहे। सी.एस.आई.आर. ने 1952 में एक कैलेंडर रिफॉर्म

कमेटी बनाई और डॉ. साहा को उसका अध्यक्ष नियुक्त किया। उन्होंने 1955 में अपनी रिपोर्ट दी जिसकी खासी प्रशंसा हुई।

डॉ. साहा दो अमूल्य संस्थानों की स्थापना के लिए जाने जाते हैं। एक संस्थान नाभिकीय भौतिकी के लिए स्थापित किया था और दूसरा जीव भौतिकी के लिए था। 1952 तक कलकत्ता विश्वविद्यालय में प्रोफेसर ऑफ फिजिक्स के रूप में काम करने के बाद वह 1956 तक भौतिकी के एमेरिट्स प्रोफेसर के रूप में काम करते रहे। 1950 से 1956 तक वह इंस्टीट्यूट ऑफ न्यूक्लियर फिजिक्स के संस्थापक निदेशक रहे। जब डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के नेतृत्व में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग 1948 में बनाया गया तो डॉ. साहा उसके भी सदस्य थे।

डॉ. साहा का विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में ज्ञान अद्वितीय था। 1920 में ही उन्होंने तारकीय वर्णक्रम खोज लिया था। इन सिद्धांतों का उपयोग तारकीय वर्णक्रमों का भेद जानने में किया। उन्होंने स्पष्टीकरण दिया कि निरतंर गरमी से पदार्थों में धीरे-धीरे विघटन होता है। पदार्थ गैस में परिवर्तित होते हैं। गैस के अणु साधारण पदार्थों में बदलते हैं और फिर घटक तत्त्वों में और अंत में तत्त्वों के अणु परमाणुओं में बदल जाते हैं। चूंकि तारों का तापमान 6000 डिग्री सेंटीग्रेड से अधिक होता है, अतः तारों के अनेक घटक परमाणु वाह्य उपग्रहीत इलेक्ट्रॉन खो बैठते हैं। साहा के इस सिद्धांत को पूरे विश्व में ख्याति मिली।

वह यहीं तक सीमित नहीं रहे। उन्होंने इस प्रकार के मिश्रण पर सुविख्यात गैसों के गणित सिद्धांत और तापगति के नियमों को लागू करने का प्रयास भी किया। उन्होंने बताया कि किसी तत्त्व के परमाणुओं के लिए खंडन या आयनीकरण उच्च तापमान से ही नहीं, वरन निम्न दबाव से भी होता है। उच्च तापमान व निम्न दबावों पर किसी परमाणु की इलेक्ट्रॉन और खंडित भागों में विभाजन कीप्रक्रिया उस समय तक लगातार चलती रहती है जब तक विभाजन और पुनर्मिलन की गति में संतुलन स्थापित नहीं हो जाता है।

आधुनिक तारा भौतिकी को आधार प्रदान करने वाले डॉ. साहा के समीकरणों से तारकीय वायुमंडल में आयनीकरण का हिसाब लगाया जा सकता है। उन्होंने तारे और परमाणु के संबंध को पहली बार स्थापित किया था।

सन् 1938 में उन्हें बोस अनुसंधान संस्थान का निदेशक नियुक्त किया गया तो उन्होंने अनेक महत्त्वपूर्ण अनुसंधान कर डाले। उन्होंने ज्योति-भौतिक विज्ञान का भी अध्ययन किया। आकाशदीप पिंडों की दशा, उनकी चमक, तापक्रम, वायुमंडल की बनावट आदि के बारे में उन्होंने महत्त्वपूर्ण जानकारी संसार को दी।

इतना महत्त्वपूर्ण अनुसंधान करने वाले डॉ. साहा प्रयोगशाला में बंद नहीं रहे। अपने हर कार्य के साथ उन्होंने उसके पीछे-पीछे सामाजिक उद्देश्य के प्रति जागरुकता भी पैदा की। वह जहां एक ओर आने वाले समय में शिक्षा, औद्योगिकरण, राष्ट्रीय आयोजन, नदी-घाटी योजनाओं, समाजवाद, कृषि सहकारिता जैसे मुद्दों पर चर्चा करते रहे, वहीं विदेशी पूंजीपतियों द्वारा देश की संपदा के दोहन और मुनाफा बाहर ले जाने का विरोध करते रहे।

एक बार कुछ बच्चे सरस्वती पूजा के लिए चंदा लेने उनके पास आए। डॉ. साहा ने उनसे पूछा कि वह सरस्वती की पूजा कैसे करेंगे तो उन्होंने बताया कि वह प्रतिमा लाएंगे, पूजा करेंगे, सांस्कृतिक कार्यक्रम करेंगे वगैरह-वगैरह।

अब डॉ. साहा ने बच्चों को समझाया कि वह नित्यप्रति सरस्वती की आराधना किस प्रकार करते हैं। उन्होंने अपने कमरे में रखी तमाम पुस्तकें, कागज, कलम, दवात आदि दिखाए और जी-तोड़ मेहनत करने का सुझाव दिया और कहा- यही ज्ञान की देवी की पूजी की वास्तविक विधि है।

वह समाजवाद के प्रबल समर्थक थे और देश की उन्नति के लिए समाजवादी ढांचा विकसित करना चाहते थे। वह सोवियत संघ के विकास से प्रभावित थे और भारत में उसी प्रकार का ढांचा चाहते थे। उन्हें विश्वास था कि देश एक दिन अवश्य आजाद होगा, पर वह चिंतित भी थे कि देश पुनः बैलगाड़ी के युग में न चला जाए। 1938 में उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष सुभाषचंद्र बोस को सलाह दी कि देश को आजादी के बाद उन्नति के पथ पर ले जाने के लिए बड़े पैमाने पर विशुद्ध और व्यावहारिक अनुसंधान प्रारंभ करना चाहिए।

जब 1938 में नेहरू की अध्यक्षता में राष्ट्रीय योजना समिति की गठन हुआ तो डॉ. साहा को इसकी ईंधन और शक्ति उपसमिति का अध्यक्ष बनाया गया। नदियों की समस्या से प्रारंभ से अवगत रहे डॉ. साहा को सिंचाई तथा जलमार्गों की उपसमिति का भी सदस्य बनाया गया। उन्हें 1940 में बोर्ड ऑफ साइंटिफिक एंड

इंडस्ट्रियल रिसर्च का भी सदस्य बनाया गया, जिसके अध्यक्ष डॉ. शांतिस्वरूप भटनागर थे।

वह 'साइंस एंड कल्चर'' नामक पत्रिका के संपादक के रूप में न सिर्फ विज्ञान का प्रचार-प्रसार करते रहे वरन गंभीर समस्याओं से भी जनता को आगाह करते रहे। उन्होंने नदी-भौतिकी की प्रयोगशाला स्थापित करने के लिए लेख लिखे और सरकार का ध्यान आकृष्ट किया। उन्होंने टेनेसी नदी परियोजना के आधार पर दामोदर घाटी परियोजना का स्वरूप तैयार किया।

आजादी के बाद उन्हें लगा कि देश की राजनीति को जिस दिशा में जाना चाहिए, वैसे नहीं जा पा रही है और राजनीतिज्ञों में वैज्ञानिक समझ का अभाव है। इसके लिए वह आम चुनाव में निर्दलीय प्रत्याशी के रूप में कूद पड़े। कलकत्ता के लोग उनकी प्रतिभा, देशभक्ति और ईमानदारी के इस कदर कायल हो चुके थे कि उन्होंने भारी बहुमत से जिता दिया ओर वह लोकसभा में पहुंच गए।

वहां उन्होंने भारी उद्योगों के विकास की वकालत की। 10 मई 1954 को जब संसद में परमाणु ऊर्जा के विकास और उसके शांतिपूर्ण उपयोगों पर बहस हुई तो डॉ. मेघनाथ साहा ने परमाणु ऊर्जा के पक्ष में अकाट्य तर्क रखे। उन्होंने देश की प्रयोगशालाओं को नवीनतम उपकरणों से सुसज्जित करने तथा पुस्तकालयों को समृद्ध करने के बारे में आवाज उठाई।

उम्र बढ़ने के बाद भी उनके मानव प्रेम में किसी किस्म की कोई कमी नहीं आई थी। भारत के विभाजन से पूर्वी बंगाल से विस्थापितों की बड़ी तादाद पश्चिम बंगाल में आ गई तो वह उनकी सेवा में जुट गए। वह उच्च रक्तचाप के मरीज थे। एक बार आंशिक पक्षाघात के भी शिकार हुए, पर फिर भी उन्होंने परिश्रम करना जारी रखा। वह न सिर्फ बंगाल वरन असम, त्रिपुरा आदि राज्यों में जाकर विस्थापितों की सेवा करते रहे।

वह अनेक भारतीय और यूरोपीय भाषाओं के ज्ञाता थे। उनकी स्मरणशक्ति गजब की थी। उन्होंने अनेक पुस्तकें भी लिखीं जिनमें 'ए ट्रीटीज ऑन दि थ्योरी ऑफ रिलेटिबिटी'', 'ऑन ए फिजिकल थ्यौरी ऑफ दि सोलर कोरोरा', 'ए ट्रीटीज ऑन हीट', 'ए ट्रीटीज ऑन मॉडर्न फिजिक्स', 'माई एक्सपीरियेन्सेस इन रशिया' आदि चर्चित रहीं।

विज्ञान के प्रचार-प्रसार में उनका योगदान अमूल्य था। इसके लिए उन्होंने 'इंडियन साइंस कांग्रेस एसोसिएशन', जैसी संस्थाएं गठित कीं। 'साइंस एंड कल्चर' जैसी पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया और उसमें राष्ट्रीय योजना, वैज्ञानिक शिक्षा, उद्योग, भू-भौतिकी, बाढ़ और अकाल-नियंत्रण, परमाणु-भौतिकी, इस्पात, उद्योग, पंचांग-सुधार, पुरातत्त्व और ऐसे ही अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों पर 100 से अधिक लेख लिखे। उन्हें, बौद्ध धर्म, भारतीय ज्योतिष, वेधशाला आदि में भी रुचि थी।

उन्होंने अपने जीवन में अभूतपूर्व सम्मान पाया। मात्र 34 वर्ष की आयु में उन्हें 1927 में रॉयल सोसाइटी का फेलो चुना गया। 1934 में भारतीय विज्ञान कांग्रेस ने उन्हें अपना अध्यक्ष निर्वाचित किया। 1937-38 में वह राष्ट्रीय विज्ञान संस्थान के अध्यक्ष बने। उन्हें जर्मनी अकादमी की भी सदस्यता हासिल थी और इटली के वैज्ञानिक भी उनका सम्मान करते थे। 1952 से 1956 तक वह कलकत्ता विश्वविद्यालय में भौतिकी के एमेरिट्स प्रोफेसर रहे। सन् 1949 में वह विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सदस्य बनाए गए।

13 फरवरी 1956 को डॉ. साहा संसद के बजट अधिवेशन में भाग लेने के लिए दिल्ली गए। इस बार उनकी योजना विस्थापितों की समस्या, बेरोजगारी, छंटनी की समस्या जैसे मुद्दों पर चर्चा करना था। 16 फरवरी को वह राष्ट्रपति भवन की ओर जा रहे थे, रास्ते में बेहोश होकर गिर पड़े। किसी ने उन्हें पहचाना और उन्हें अस्पताल ले जाया गया, परन्तु तब तक वह दुनिया से जा चुके थे।

उनकी स्मृति में प्रतिवर्ष वैज्ञानिकों और लेखकों को पुरस्कार दिए जाते हैं। कृतज्ञ राष्ट्र ने उनके द्वारा स्थापित संस्थान का नामकरण 'साहा इंस्टीट्यूट ऑफ न्यूक्लियर फिजिक्स' कर दिया है।

होमी जहाँगीर भाभा

बलीराम कमल भोइर

आज भारत परमाणु शक्ति संपन्न देश है। देश को इस राह पर लाने का श्रेय होमी जहांगीर भाभा हो जाता है। उनका जन्म 30 अक्टूबर 1909 को बंबई में हुआ था। उनके पिता जहांगीर भाभा ने आक्सफोर्ड में शिक्षा पाई थी और वह जाने-माने वकील थे। पारसी कुल के जहांगीर भाभा ने टाटा इंटरप्राइजेस के लिए भी काम किया था। होमी की माता भी उच्च घराने की थीं और पितामह मैसूर राज्य के उच्च शिक्षाधिकारी थे।

बालक होमी को नींद कम आती थी। अनेक चिक्तिसकों ने उसकी जांच की और पाया कि यह बीमारी नहीं है वरन् बालक इतनी तेज बुद्धि का है कि उसके मस्तिष्क में विचारों का प्रवाह लगातार चलता रहता है।

उनके माता-पिता ने एक पुस्तकालय की व्यवस्था घर पर किया जिसमें वह विज्ञान सहित अनेक विषयों की पुस्तकें पढ़ते रहते। होमी की प्रारंभिक पढ़ाई कैथेड्रल स्कूल में हुई। बाद वह जॉन कैनन हाईस्कूल में भी पढ़ने गए। पढ़ने लिखने में वह बहुत तेज थे और मात्र 15 वर्ष की आयु में सीनियर कैंब्रिज की पढ़ाई पुरी कर ली। इसके बाद एलिफिस्टन कालेज मुंबई में उन्होंने 12वीं पास किया।

उच्च शिक्षा के लिए वह कैंब्रिज रवाना हुए। अब तक उन्होंने काफी स्वाध्याय कर रखा था। 15 वर्ष की आयु में उन्होंने आइंस्टाइन का सापेक्षता सिद्धांत पढ़ डाला था। भौतिकशास्त्र में उनकी काफी रुचि थी। और उन्हें गणित प्रिय विषय लगता था। पर पिता की इच्छा पूरी करने के लिए उन्होंने इंजीनियरिंग विषय चुना और 1930 में कैंब्रिज विश्वविद्यालय से मैकेनिकल इंजिनियरिंग की डिग्री हासिल कर ली।

पढ़ाई में वह इस कदर आगे थे कि उन्हें लगातार छात्रवृति मिलती रही। ट्रिनिटी कालेज में मिली छात्रवृति का उपयोग उन्होंने यूरोप के अनेक देशों की सैर करके किया।

इंजिनियरिंग पूरी करने के बाद वह आगे पढ़ाई करते रहे और 1934 में उन्होंने पीएचडी की डिग्री हासिल की। इस दौरान उन्हें आइजक न्यूटन फेलोशिप मिला. उन्हें रदरफोर्ड, डिराक, नील्स बोर जैसे वैज्ञानिकों के साथ काम करने का अवसर भी मिला। उन्होंने गणित का विशेष अध्ययन भी किया।

उन्होंने कास्केड थ्योरी ऑफ इलेक्ट्रॉन शावर्स का भी प्रतिपादन किया और साथ में कॉस्मिक किरणों पर काम किया। जो पृथ्वी की ओर आती हुई वायुमण्डल में प्रवेश करती है। उन्होंने कॉस्मिक किरणों की अनेक रहस्यमय गुथियों को सुलझाया।

दूसरा विश्वयुद्ध 1939 में प्रारंभ हुआ। तब भाभा भारत लौट आए। हालांकि उस समय तक वह ख्याति प्राप्त वैज्ञानिक बन चुके थे

और विश्व के किसी भी देश में बढ़ियां नौकरी पा सकते थे पर उन्होंने मातृभूमि के लिए काम करने का फैसला किया।

1940 में वह भारतीय विज्ञान संस्था बंगलौर में सैद्धांतिक भौतिकी के रीडर पद पर नियुक्त हुए। उन्होंने कॉस्मिक किरणों पर शोध के लिए एक अलग विभाग की स्थापना किया। 1941 में उन्हें रॉयल सासाइटी की सदस्य चुना गया। उस समय वह मात्र 31 वर्ष के थे। 1942 में वह संस्थान में प्रोफेसर पद पर नियुक्त हो गए।

उन्हीं दिनों बंगलौर में एक व्याख्यान की अध्यक्षता नोबल पुरस्कार विजेता प्रोफेसर सी.वी. रमन कर रहे थे। वह भी भाभा से प्रभावित हुए बगैर न रह सके।

डॉ भाभा, डॉ सी वी रमण और अन्य वैज्ञानिक

भाभा ने आधुनिक भारत के निर्माण की महात्वकांक्षी योजना बनाना प्रारंभ कर दिया। हालांकि उनकी रुचि शास्त्रीय नृत्य, मूर्तिकला आदि में भी थी, पर वह समझते थे कि सिर्फ विज्ञान ही देश के उन्नति के पथ पर ले जा सकता है।

डा. होमी जहांगीर भाभा के संबंध टाटा परिवार से पहले से थे। उन्होंने टाटा को एक अनुसंधान संस्था को खोलने के लिए राजी कर दिया। नवगठित टाटा इंस्टिट्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च के निदेशक नियुक्त हुए।

13 मार्च 1944 को उन्होंने दोराबजी टाटा ट्रस्ट के नाम पत्र लिखा। जिसमें परमाणु-शक्ति बिजली पैदा करने की महत्वकांक्षी योजना थी। उस समय तक विश्व में परमाणु शक्ति की कल्पना करने वाले बिरले ही थे। हीरोशिमा और नागासाकी पर जब एक वर्ष बाद अमेरिका ने परमाणु बम गिराये तो सारी दुनिया को उसकी जानकारी मिली।

भाभा के प्रयासों की सर्वत्र सराहना हुई। भारत को परमाणु शक्ति संपन्न बनाने की कल्पना अंगड़ाई लेने लगी। भारत सरकार तथा तत्कालीन बंबई सरकार टाटा संस्थान को भरपूर मदद करने लगी।

संस्थान ने पैडर रोड पर एक किराए के भवन में अपना काम प्रारंभ किया। बाद में इसका विस्तार किया गया। आज यह एक सुदंर और विस्तृत भवन में काम कर रहा है।

यहां शुद्ध गणित प्रयोगिक और सैद्धांतिक, भौतिकी, कंप्यूटर तकनीकी और भू-भौतिकी पर अध्ययन और अध्यापन प्रारंभ हुआ, साथ में अणुशक्ति विस्फोटों के सिद्धात आइसोटोप और यूरेनियम के शुद्धिकरण पर भी कार्य प्रारंभ हुआ। भाभा ने कैंब्रिज तथा पेरिस में जो शिक्षा पाई थी। उसे यहां मूर्त रूप दिया गया।

भाभा और जेआरडी टाटा दोनों ही दूरदर्शी थे। दोनों ने इस केंद्र को आगे बढ़ाया।

आजादी के 11 दिन बाद 26 अगस्त 1947 को भाभा ने अणुशक्ति की शोध समिति के समक्ष कहा कि आने वाले समय में हमें अणुशक्ति के क्षेत्र में काम करके देश को विकसित देश की श्रेणी में खड़ा करना है।

आजादी के पश्चात भारत सरकार ने परमाणु ऊर्जा आयोग का गठन किया। डा. होमी जहांगीर भाभा उसके पहले अध्यक्ष बने। इसके साथ ही उन्हें भारत सरकार के परमाणु ऊर्जा विभाग का सचिव भी नियुक्त किया गया। प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू भाभा पर बहुत विश्वास करते थे।

भाभा के नेतृत्व में ही ट्रांबे मुंबई के पास परमाणु शक्ति केंद्र स्थापित किया गया। उनका उद्देश्य था कि बिना बाहरी सहायता के देश परमाणु शक्ति संपन्न बनें। ट्रांबे स्थित उस केंद्र में इस उद्देश्य से पांच विभाग खोले। भौतिकी इलेक्ट्रानिकी, अभियांत्रिकी, धात्विकी और जीव विज्ञान। भाभा परमाणु शक्ति के खतरों से भी वाकिफ थे। और उन्होंने इस उद्देश्य से एक चिकित्सा विभाग तथा विकिरण सुरक्षा विभाग भी खोला था।

डा. भाभा का सपना धीरे-धीरे साकार होने लगा। 1955 में भाभा जेनेवा में आयोजित एक सम्मेलन में भाग लेने गए। वहां कनाडा ने भारत को परमाणु रिएक्टर बनाने में सहायता देने का प्रस्ताव किया। भाभा ने वहीं से 29 अगस्त 1955 को प्रधानमंत्री को तार भेजकर प्रस्ताव की मंजूरी मांगी जो उन्हें मात्र 3 दिन में प्राप्त हो गई। इस प्रकार भारत कनाडा सहयोग से सायरस परियोजना प्रारंभ हो गई।

इससे पहले भारत में पहले रिएक्टर का निर्माण कार्य 1955 में प्रारंभ हो गया था। 6 अगस्त 1956 को इसने काम करना प्रारंभ कर दिया। इसके लिए ईंधन यूरेनियम ब्रिटेन ने दिया था। इस रिएक्टर का उपयोग न्यूट्रान भौतिकी विकिरण, रसायन शास्त्र, प्राणी शास्त्र, रेडियो आइसोटोप के निर्माण आदि में किया जाने लगा।

सायरस परियोजना 1960 में और जेरेलीना परियोजना 1961 में पूरी हुई। 1200 इंजिनियरों और कुशल कारीगरों ने इसमें रात-दिन काम किया। कार्य पूरा होने पर भारत का इस क्षेत्र में आत्मविश्वास काफी बढ़ गया।

रिएक्टरों के निर्माण से देश में परमाणु शक्ति से चलने वाले विद्युत संयंत्रों की योजना का रास्ता साफ हो गया। तारापुर अणुशक्ति केंद्र से बिजली का उत्पादन होने लगा। बाद में दो अन्य केंद्र राजस्थान में राणाप्रताप सागर तथा तमिलनाडू में कल्पक्कम में खोले गए। ये सभी डॉ. होमी जहांगीर भाभा के ही प्रयत्नो ंका परिणाम थे।

शांतिपूर्ण कार्यों के लिए शक्ति के उपयोग के लिए रास्ता तैयार करने के लिए भाभा को हमेशा याद किया जाता रहेगा। वह विदेशी प्राप्त यूरेनियम पर निर्भर नहीं रहना चाहते थे। वह स्वदेशी प्लूटोनियम, थोरियम आदि का उपयोग बढ़ाना चाहते थे। विश्व में थोरियम का सबसे भंडार भारत में है।

उनके प्रयासों से कृषि उद्योग औषधि और प्राणी शास्त्र के लिए आवश्यक 250 रेडियो, आइसोटोप आज देश में ही उपलब्ध हैं। निर्यात के लिए देश तैयार है।

भाभा ने जल्दी नष्ट हो जाने वाले खाद्य पदार्थों जैसे - मछली, फल, वनस्पति आदि को जीवाणुओं से बचाने के लिए विकिरण के प्रभाव का इस्तेमाल करने को उच्च प्राथमिकता दी और इस दिशा में लंबा शोध किया। बीजों के शुद्धिकरण पर भी जोर दिया ताकि अधिक उत्पादन किया जा सके। भूगर्भीय विस्फोटकों और भूकंप के प्रभावों का अध्ययन करने के लिए ही बंगलौर से 80 किलोमीटर दूर एक केंद्र स्थापित करवाया।

प्रत्येक वैज्ञानिक को अपने अनुसंधान कार्य के लिए आधुनिक उपकरणों की आवश्यकता होती है। भाभा ने भी इस कमी का सामना किया और ट्रांबे में ही इनके निर्माण की योजना बनाई। धीरे-धीरे ट्रांबे में 2000 से अधिक इलेक्ट्रानिक उपकरण बनाये जाने लगे।

भाभा सिर्फ अपने काम तक सिमित नहीं रहते थे। वह आजाद भारत के अन्य विज्ञान केंद्रों के भी खुलकर सहायता करते थे। साहा अणुशक्ति केंद्र कलकत्ता, भौतिक शोध प्रयोगशाला अहमदाबाद और अन्य प्रयोगशालाओं को भी उन्होंने सहायता दिलवाई।

उस समय भारत में वैज्ञानिकों की भारी कमी थी। भाभा ने विदेशों में कार्य कर रहे भारतीय वैज्ञानिकों का आह्वान किया कि वे मातृभूमि में लौटें। उनकी पुकार पर तमाम वैज्ञानिक स्वदेश लौटे और भाभा ने उन्हें ट्रांबे में बेहतर नौकरी तथा सुविधाएं दिलाई। उन्हें वैज्ञानिकों की अच्छी परख थी। उन्होंने चुन-चुनकर अच्छे वैज्ञानिकों को उचित पदों पर बैठाया और अच्छा दल तैयार किया। उस दल को उन्होंने अच्छा वातावरण भी दिया। लाल फीतासाही से उन्हें सख्त चिढ़ थी और एकबार उन्होंने प्रधानमंत्री से कह भी दिया कि आपका विभाग डायरेक्टरेट ऑफ सप्लाई और डिस्पोजल पसंद नहीं है। मेरे वैज्ञानिकों की जरुरतें तत्काल और उनकी सुविधा अनुसार पूरी होनी चाहिए।

परमाणु ईंधन की दिशा में देश को आत्मनिर्भर बनाने के लिए उनके प्रयासों से भारती रेयर अर्थस ने 1952 में केरल के समुद्री तट पर उपलब्ध मोनोजाइट बालू को संसोधित करके थोरियम और फास्फेट को अलग-अलग करना प्रारंभ कर दिया। ट्रांबे में अपरिकृष्ट थोरियम हाइड्रोआक्साइड तथा युरेनियम के संस्थान के लिए संयंत्र लगाया गया।

डॉ. भाभा का योगदान सिर्फ भारत के लिए नहीं वरन सभी विकासशील देशों के लिए मूल्यवान है। जब जेनेवा में 'परमाणु उर्जा का शांतिपूर्ण उपयोग' नामक गोष्ठी हुई तो भाभा को इसका सभापति बनाया गया। पश्चिमी देशों के वैज्ञानिक इस विचारधारा का प्रचार कर रहे थे कि अल्पविकसित राष्ट्रों को पहले औद्योगिक विकास करना चाहिए। तब परमाणु शक्ति के पीछे भागना चाहिए। भाभा ने इसका जोरदार खंडन करते हुए कहा कि अल्पविकसित

जेनेवा में "परमाणु उर्जा के शांतिपूर्ण उपयोग" पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी में डॉ भाभा और अन्य वैज्ञानिक

भारत को अणु-शक्ति की ऊंचाई पर ले जाने के मामले में महत्वकांक्षी भाभा को निजी प्रतिष्ठा की लालसा नहीं थी। भारत सरकार में महत्वपूर्ण पदों पर उत्कृष्ट कार्य करने के पश्चात उनके समक्ष केंद्रीय मंत्रीमंडल में शामिल होने का प्रस्ताव भी आया। पर उन्होंने विनम्रता पूर्वक मना कर दिया। मंत्रीपद के वैभव से ज्यादा प्यार उन्हें विज्ञान से था।

उन्हें संगीत, कला आदि में भी रुचि थी। वह आधुनिक चित्रकारों को प्रोत्साहन देने के लिए उनके चित्रों को खरीदकर ट्रांबे स्थित प्रतिष्ठान में लगवाते थे। अच्छे संगीतकारों के कार्यक्रमों में वह भाग लेते थे।चित्रकारिता संगीत, वृक्ष, फूलों आदि पर भी वह उतने ही अधिकार से बोल लेते थे जितने अधिकार से वह विज्ञान पर बोलते थे। टाटा संस्थान और ट्रांबे संस्थान की डिजाइन वहां पौधे, फूल तथा बाग खुलकर उनके प्रकृति प्रेम का बखान आज भी करते हैं। उनके प्रयासों से ट्रांबे सिर्फ एक निरस वैज्ञानिक स्थल हीं नहीं वरन् दर्शनीय स्थल बन गया। इसके एक ओर समुद्र है तो दूसरी ओर पहाड़ी। चारा ओर छायादार वृक्ष और रंग-बिरंगे फूल हैं।

देश परमाणु शक्ति का आसानी से प्रयोग शांतिपूर्ण कार्यों और औद्योगिक विकास के लिए कर सकते हैं।

नाभिकीय भौतिकी में महत्वपूर्ण काम करने वाले तथा मैसॉन नामक प्राथमिक कण की खोज करने वाले होमी जहांगीर भाभा आजीवन अविवाहित ही रहे। उन्होंने जनता से ही विवाह कर लिया और काम करते रहे। 1941 में उन्हें रॉयल सोसाइटी ने फेलो निर्वाचित किया। उस समय उनकी आयु मात्र 31 की थी। 1943 में एडम्स पुरस्कार 1948 में हॉपकिंस पुरस्कार सहित अनेक पुरस्कार उन्हें मिले। 1954 में भारत के राष्ट्रपति ने पद्मभूषण से अलंकित किया। रदरफोर्ड, डिराक नील्स बोर जैसे लब्धप्रतिष्ठ वैज्ञानिकों के साथ काम करने वाले भाभा को तमाम विश्वविद्यालयों ने डा. ऑफ साइंस की उपाधि से विभूषित किया। 1959 में यह उपाधि कैंब्रिज विश्वविद्यालय ने दी।

भाभा संयुक्त राष्ट्र संघ और अंतरराष्ट्रीय अणु-शक्ति एजेंसी के कई वैज्ञानिक सलाहकार मंडलों के सदस्य थे। अंतरराष्ट्रीय मंचों पर वह अणु-शक्ति के शांतिपूर्ण उपयोग पर ही बल देते थे।

जहां वह एक ओर प्रतिभावों की तलाश में उत्कृष्ट थे वहीं मित्र बनाने में भी उदार थे। मेहनती व सक्रिय लोगों को वह बहुत पसंद करते थे। काम के दौरान गलती करने वाले लोगों को क्षमा करने में वह बहुत उदार थे। लोगों की व्यक्तिगत समस्याओं को सुलझाने में भी दिलचस्पी लेते थे।

भाभा की तीन पुस्तकें क्वांटम थियरी, एलीमेंटरी फिजिकल पार्टीकल्स व कॉस्मिक रेडिएशन काफी चर्चित रही। वह और काम करने चाहते थे। किसी की मृत्यु की अवसर पर काम बंद करने के सख्त खिलाफ थे। उनके अनुसार कड़ी मेहनत ही सच्ची श्रद्धांजलि थी। 24 जनवरी 1966 को जब वह एक अंतरराष्ट्रीय परिषद में शांति मिशन के लिए भाग लेने जा रहे थे तो उनका बोइंग 707 जहाज कंचन जंगा बर्फीले तुफान में उलझकर गिर गया और भारत माता के इस महान स्वप्न दृष्टा पुत्र का आकस्मिक निधन हो गया। उनके सिद्धांतो के अनुसार ट्रांबे के वैज्ञानिकों ने उस दिन असहनीय दुख को सहते हुए भी पूरे दिन काम करते हुए उनको अपनी श्रद्धांजलि दी।

देश में 12 जनवरी 1967 को ट्रांबे स्थित संस्थान का नामकरण उनके नाम पर कर दिया।

भाभा असमय चले गए पर उनका सपना साकार हुआ। 1974 में भारत पूर्णरूप से परमाणु शक्ति संपन्न राष्ट्र बन गया।

डॉ. सुब्रह्मण्यम चंद्रशेखर

प्रदीप महाडेश्वर

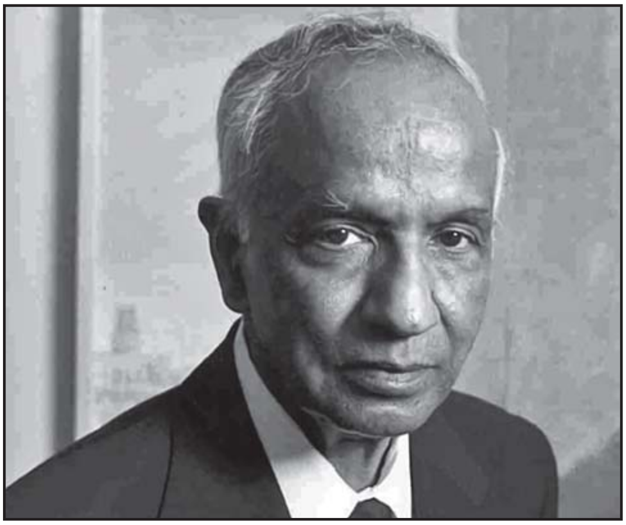

खगोल भौतिकी में असाधारण कार्य करने वाले सुब्रह्मण्यम चंद्रशेखर का जन्म 29 अक्टूबर 1910 को हुआ था। उनकी शिक्षा मद्रास के प्रेसीडेंसी कॉलेज में हुई। कॉलेज की पढ़ाई के दौरान ही वह अपने आसाधारण गणित विज्ञान के कारण लोकप्रिय हो गए थे। सन् 1928 में मात्र 18 वर्ष की आयु में रॉयल सोसायटी के कार्यवाही की प्रतिवेदन में प्रकाशित हुआ था।

18 वर्ष की आयु में उन्होंने विश्व प्रसिद्ध फर्मी डिराक सिद्धांत (अणु भौतिकी) समझ लिया था। उनके एक निबंध पर, जो तारों के संबंध में था, प्रसिद्ध वैज्ञानिक एडिंगटन की पुस्तक उपहार स्वरूप मिली थी। उनके चाचा सी.वी. रमन ने जब अन्य वैज्ञानिकों से उनका लेख विज्ञान कांग्रेस के अधिवेशन में सुना तो वह गदगद हो गए।

1930 में मद्रास विश्वविद्यालय में एम.ए. आनर्स की परीक्षा में न सिर्फ प्रथम श्रेणी और सर्वाधिक अंक पाए वरन अंकों का एक रिकॉर्ड खड़ा कर दिया।

रिकॉर्ड अंकों की प्राप्ति पर चंद्रशेखर को छात्रवृत्ति भी मिली और इंग्लैंड स्थित ट्रिनिटी कैंब्रिज में पहुंचकर उन्होंने अनुसंधान कार्य प्रारंभ कर दिया।

मात्र 23 वर्ष की आयु में उन्होंने पीएचडी हासिल की। अपनी योग्यता, प्रतिभा और लगन कुशाग्र बुद्धि से उन्होंने आइजक न्यूटन छात्रवृत्ति तथा शिप शैक पुरस्कार जीता। 1935-36 में उन्हें ट्रिनिटी कॉलेज की फेलोशिप भी मिली।

इसके बाद वह कुछ दिनों तक हार्वर्ड विश्वविद्यालय में रहे। सन् 1934 में वह यर्कीस वेधशाला शिकागो में अनुसंधान सहायक के रूप में नियुक्त हुए। इंग्लैंड में हुए विख्यात वैज्ञानिक एडिंगटन से परिचय ने उनकी रुचि खगोल विज्ञान में और बढ़ा दी। वह पूरी रुचि से काम करते रहे।

चंद्रशेखर को अपनी माता-पिता व अपनी मातृभूमि से अगाध प्रेम था। वह भारत लौटकर अपने देश की सेवा भी करना चाहते थे। परन्तु विज्ञान की जिस शाखा में वह काम करना चाहते थे, उसके साधन और संभावनाएं भारत में नहीं थी। मजबूर चंद्रशेखर अपनी माता-पिता से अनुमति लेकर अमेरिका में ही रहने लगे। परन्तु उन्होंने भारतीय नागरिकता नहीं छोड़ी।

1938 तक यर्कीस वेधशाला में काम करने के बाद शिकागो विश्वविद्यालय में सहायक प्रोफेसर के रूप में काम करने का अवसर मिला। इसी बीच 11 जनवरी 1935 को उन्होंने रॉयल स्ट्रोनॉमिकल सोसायटी की मीटिंग में एक लेख पढ़ा, जिसका मुख्य

डॉ सुब्रह्मण्यम चंद्रशेखर अपने शोध के बारे में चर्चा करते हुए

विषय था, "तारे की उस समय क्या स्थिति होगी, जब वह अपनी ईंधन रूपी सारी पूंजी गंवा चुकेगा"। उस समय तक यह माना जाता था कि ज्यों-ज्यों तारे का ईंधन समाप्त हो जाता था, वह अपने गुरुत्वाकर्षण के कारण सिकुड़ता हुआ व्हाइट ड्वार्फ या सफेद बौने की शकल में आ जाएगा। इसका अर्थ यह है कि सूर्य के आकार का तारा सिकुड़ता हुआ संतुलन अवस्थान में पहुंचते-पहुंचते पृथ्वी के आकार का सफेद वामन बन जायेगा।

चंद्रशेखर ने अपने तब तक के शोध के आधार पर दृढ़तापूर्वक कहा कि जब तारे की गैस संकुचित होती है या दबती है तो उसके इलेक्ट्रॉन लगभग प्रकाश की गति से हलचल करने लगते हैं। इस विचित्र स्थिति को अपेक्षकीय ह्रास की स्थिति कहते हैं।

उपस्थिति विद्वानों ने इस सिद्धांत की खिल्ली उड़ाई। यहां तक कि एडिंगटन जैसे वैज्ञानिक यद्यपि चंद्रशेखर के तर्कों और गणनाओं का उत्तर तो नहीं दे पाए, पर अड़ गए कि उनका प्रतिपादित सिद्धांत गलत है। वह कहते रहे कि तारा अपने आप अंतिम क्षण तक सिकुड़ता हुआ तब तक चमकता रहेगा, जब तक गुरुत्वाकर्षण उसमें चमक रखेगा। बाद में वह कुछ मील के घेरे तक सिमट जाएगा और अंत में समाप्त हो जाएगा।

वरिष्ठ वैज्ञानिकों द्वारा उनके सिद्धांत को ठुकरा दिए जाने के बाद भी चंद्रशेखर विचलित नहीं हुए और काम करते रहे। सन् 1942 में एसोसिएट प्रोफेसर पद पर नियुक्त हो गए। सन् 1944 से 1946 तक वह प्रोफेसर रहे और सन् 1947 से 1952 तक वह सैद्धांतिक तारा भौतिकी के विशिष्ट सेवा प्रोफेसर के पद पर कार्यरत रहे। इसके बाद वह शिकागो विश्वविद्यालय में सैद्धांतिक तारा भौतिकी के मॉर्टन-डी हल विशिष्ट सेवा प्राध्यापक पद पर कार्य करते रहे।

अल्पायु से चंद्रशेखर की रुचि लेखन में रही। उनकी प्रथम पुस्तक 'एन इंट्रोक्शन टू द स्टडी ऑफ स्टेलर स्ट्रक्चर' 1939 में प्रकाशित हुई। इसने तारों की रचना के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान और दिशा प्रदान की।

उनकी दूसरी पुस्तक 1943 में शिकागे विश्वविद्यालय प्रेस ने प्रकाशित की, जिसका शीर्षक था - प्रिंसिपल ऑफ स्टैलर डायनॉमिक्स। सन् 1950 में रेडिएटिव ट्रांसफर शीर्षक तीसरी पुस्तक भी प्रकाशित हो गई, इसे ऑक्सफोर्ड ने प्रकाशित किया। इसमें उन्होंने अपने तारकीय वायुमंडलों पर किए गए अनुसंधान का ब्यौरा दिया है। इस पुस्तक पर डॉ. चंद्रशेखर को प्रतिष्ठित एडम्स पुरस्कार मिला जो श्रेष्ठ गणितज्ञों को दिया जाता है।

डॉ. चंद्रशेखर आगे बढ़ते रहे, विज्ञान के साथ-साथ लेखन भी चलता रहा और 1961 में उनकी चौथी पुस्तक हाइड्रो डायनॉमिक्स व हाइड्रो मैग्नेटिक इस्टेबिलिटी भी प्रकाशित हुई जिसके उपलक्ष्य में रॉयल सोसायटी ने उन्हें रॉयल मेडल से सम्मानित किया।

भारत में वैज्ञानिकों द्वारा उनकी धारणा को नकार देने के बावजूद वह अनुसंधान करते रहे। उन्होंने तारों के क्रम विकास की खोज जारी रखी और खगोलज्ञों की तरह भी वह उन तारों का अध्ययन करते रहे जिनकी नाभकीय ऊर्जा समाप्त हो जाती है। उन्होंने इस बात का भी पता लगाया कि तारकीय और आकाशकीय ज्वालाओं के एक बार जलने का क्या परिणाम होता है। उन्होंने क्वांटन सिद्धांतों पर आधारित गणित द्वारा साबित किया कि कोई भी तारा अपनी वर्तमान स्थिति में रहते हुए चमकता नहीं रह सकता। उसके अंदर का परमाणु ईंधन समाप्त हो जाता है और उसके अंदर रचनात्मक परिवर्तन होने लगता है। उन्होंने यह भी सिद्ध कर दिया कि तारों का अंदरुनी भाग एक सीमा से अधिक नहीं सिकुड़ता है। श्वेत वामन स्थित में आने से पहले यह पता लगाया जा सकता कि

इस तारे का अंत कब होगा। अब तक ज्ञान श्वेत वामन तारों में से किसी के पास हाइड्रोजन नहीं है।

देर से सही दुनिया ने चंद्रशेखर द्वारा किए गए कार्य को स्वीकार कर लिया। 1982-83 में उन्हें नोबल पुरस्कार से नवाजा गया। यह पुरस्कार उन्हें भौतकीय में चंद्रशेखर लिमिट व्हिच डिटरमाइंस 6 मिनिमम ऑफ डाइन स्टार इनेबलिंग इट टू सर्वाइबल पर मिला।

सन 1983 में नोबल पुरस्कार प्राप्त करते हुए
डॉ सुब्रह्मण्यम चंद्रशेखर

1953 में अमेरिकी नागरिकता स्वीकार करने वाले डॉ. चंद्रशेखर का वैज्ञानिक कार्य बहुत व्यापक और विस्तृत है। इसमें तारों की रचना, तारों का वायुमंडल क्षोभ सिद्धांत (थ्यौरी ऑफ टर्बूलेंस) चुंबकीय क्षेत्र तथा गैरचुंबकीय क्षेत्र के तरलों की संयोजित गतियों की स्थिरता आदि शामिल है।

डॉ. चंद्रशेखर के कार्यक्षेत्र में प्लाज्मा भौतिकी भी शामिल है जिसमें चुंबकीय तथा विद्युत क्षेत्र में आयनीकृत गैसों के व्यवहार पर अध्ययन किया जाता है। शिकागो विश्वविद्यालय ने सन् 1960 में उनका इस विषय पर भाषण प्रकाशित किया। उनकी विविध वैज्ञानिक अभिरुचियों पर दूसरे वैज्ञानिक चुटकी लेते हैं कि डॉ. चंद्रशेखर खगोलज्ञ हैं, या भौतिकीविद् या गणितज्ञ हैं। डॉ. चंद्रशेखर की मौलिक रुचि खगोल विज्ञान में ही है।

डॉ.चंद्रशेखर 1944 में रॉयल सोसायटी लंदन के फेलो निर्वाचित हुए थे। पैसेफिक रॉयल सोसायटी अमेरिका ने उन्हें ब्रूस स्वर्णपदक 1952 में प्रदान किया और 1953 में रायल एस्ट्रोनॉमिकल सोसायटी ने स्वर्ण पदक दिया।

1957 में अमेरिकी कला और विज्ञान अकादमी ने रैम फोर्ट मेडल प्रदान किया। इसके अलावा 1962 में उन्हें रॉयल मेडल, 1984 में रॉयल सोसायटी द्वारा काप्ले मेडल आदि भी उन्हें मिल चुके हैं। अनेक अमेरिकी प्रतिष्ठित पदों के अलावा उन्हें 1962 में भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी ने रामानुज पदक एवं राष्ट्रीय विज्ञान पदक से भी सम्मानित किया। वह प्रतिष्ठित नेशनल अकादमी औफ साइंसेज यू.एस.ए. के सदस्य हैं तथा अमेरिकन एस्ट्रोनॉमिकल सोसायटी के भी सदस्य हैं।

भारत सरकार ने 1968 में उन्हें पद्मविभूषण की उपाधि से विभूषित किया था। सन् 1984 में शांति निकेतन ने भी उन्हें सम्मानित किया।

सम्मानों और उपाधियों से अविचलित डॉ. चंद्रशेखर अपने चाचा सी.वी. रमन की तरह बढ़ती आयु की परवाह नहीं करते हुए गतिशील द्रव्य पर गुरुत्वाकर्षण, ब्रह्मांड की अन्य शक्तियों विशेष चुंबकीय प्रभाव आदि का अध्ययन करते रहे। उन्होंने साबित कर दिया कि आकाश गंगा की फैली हुई जो लड़िया दिखाई देती हैं, वह क्षीण चुंबकीय प्रभाव का ही फल है। सन् 1952 से 1971 तक वह ट्रेस्टोफिजिकल जनरल के संपादक भी रहे।

आरंभ से तारों की खोज करने वाले डॉ. चंद्रशेखर आज स्वयं आज ऐसे तारे बन गए हैं जिसकी चमक और प्रकाश बढ़ता जा रहा है। आज वह विज्ञान जगत के एक अत्यधिक उज्जवल नक्षत्र हैं और देश को उन पर गर्व है।

आप बीती

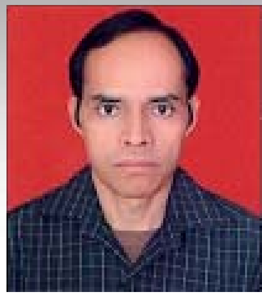

काले खान

यह उस समय की बात है, जब मैं श्रम एवं रोजगार मंत्रालय में कनिष्ठ हिंदी अनुवादक के पद पर तैनात था (जबकि आज की तारीख में, मैं रक्षा मंत्रालय, रक्षा उत्पादन विभाग में वरिष्ठ अनुवादक के पद पर तैनात हूं)। 25 दिसंबर, 2007 को अपने परिवार के साथ छुट्टी लेकर अपने पैतृक गांव (मोहम्मदपुर उर्फ नया गांव, शाहजहांपुर, उ.प्र.) गया हुआ था। अपने गांव में बकरीद मनाने के बाद, मैं अपने परिवार के साथ अपनी ससुराल चला गया था। मेरी ससुराल मेरे गांव से लगभग 50 किलो मीटर की दूरी पर अल्लाहगंज नामक कस्बे में है। मुझे 26 दिसंबर, 2007 को दिल्ली के लिए रवाना होना था, क्योंकि 27 दिसंबर, 2007 को मुझे अपनी ड्यूटी पर हाजिर होना था, लेकिन मुझे क्या पता था कि यह दो दिन की छुट्टी 404 दिनों की छुट्टी में तबदील हो जाएगी ???

26 दिसंबर 2007 को जैसे ही हम लोग (मैं, मेरी पत्नी और मेरे बच्चे-रिफा खान एवं अरीब खान) दिल्ली आने के लिए तैयार हो रहे थे, तभी अचानक मेरे दाहिने पैर में हल्का-हल्का दर्द (ऐंठन) शुरू हो गया। यह दर्द कुछ अजीब-सा था। मुझे क्या पता था कि यह दर्द मेरी जिन्दगी बदल कर रख देगा। यह दर्द आरोही क्रम में था, यानि पैर में नीचे से ऊपर की तरफ बढ़ रहा था। यह दर्द बढ़ता देखकर, मैंने उस दिन दिल्ली आने का कार्यक्रम स्थगित कर दिया। मैं अपने पैर में तेल से मालिश करके रात्रि में तकरीबन 10.00 बजे सो गया।

अगले दिन सुबह तकरीबन 4.30 बजे मेरी नींद खुली और मैं वॉशरूम जाने के लिए बिस्तर से उठा, तो मैंने पाया कि मैं शराबियों की तरह लड़खड़ाता हुआ चल रहा हूं। यह देख कर मेरे होश उड़ गए, क्योंकि मैंने अपने जीवन में कभी भी मदिरा का सेवन नहीं किया। जैसे-तैसे करके मैं वॉशरूम में पहुंच गया और बैठकर पेशाब करने लगा। जब मैं उठने लगा, तो मैंने पाया कि मैं खड़ा नहीं पा रहा हूं। मैंने हिम्मत करके अपने दोनों हाथों की कोहनी वॉशरूम की दीवार पर लगाकर खड़ा होने में सफल रहा। धीरे-धीरे दीवार के सहारे मैं अपने बिस्तर तक आ गया। मैंने बिस्तर पर अपना हाथ रखा और बैठने के लिए जैसे ही मैं झुका, धड़ाम से फर्श पर गिर गया। मेरे गिरने की आवाज सुनकर मेरी पत्नी, जिसका नाम कमर जहां है, जाग गई और वह मेरी हालत देखकर घबरा गई। उसने अपने सभी घर वालों को उठा दिया और वह जोर-जोर से रोने लगी। यह देखकर सभी लोग घबरा गए। मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा था कि मैं क्या करूं ? तभी मेरे बड़े साले(अब्दुल अजीज) ने बाइक निकाली और वह शर्मा डॉक्टर को बुलाकर ले आया। डॉक्टर ने मेरी नब्ज देखकर कहा "घबराने की कोई बात नहीं है, इनको ठंड लग गई है। मैं दवा दे रहा हूं। कुछ देर में इनको आराम मिल जाएगा।" मेरी पत्नी ने मुझे पहली खुराक दवा खिलाई और वह मेरे पास बैठ गई। मैंने पाया कि ज्यों-ज्यों समय बीत रहा है, मेरी तबियत और ज्यादा बिगड़ रही है।

तकरीबन 4-5 घंटों में मेरा आधा शरीर पावरलेस हो गया। तभी मैंने एक अपने डॉक्टर दोस्त को फोन लगाया और उसको फोन पर सारी परेशानी के बारे में बताया, तो उसने कहा कि "यह जी.बी.सिन्ड्रोम (गुलियन बेरी सिन्ड्रोम) का अटैक है। तुरंत बरेली जाकर किसी अस्पताल में भर्ती हो जाओ, क्योंकि इस बीमारी में Survival बहुत कम है। अगर

समय पर इलाज मिल जाए, तो इंसान इस बीमारी से स्वस्थ हो सकता है।" मेरे सालों (अब्दुल अजीज एवं अब्दुल लतीफ) ने एक कार किराए पर ली और मुझे बरेली ले जाने की तैयारी की। इस वक्त तक मैं स्वयं चलने-फिरने व खड़े होने की हालत में नहीं रहा। दो-तीन लोगों ने मुझे उठाकर कार में बिठाया और बरेली के लिए चल दिए। बरेली, अल्लाहगंज से लगभग 100 किलो मीटर की दूरी पर स्थित है। बरेली पहुंचते-पहुंचते शाम के 6 बज गए।

बरेली महाजन अस्पताल में पहुंचने के कुछ समय बाद, डॉ महाजन आये। उसने मुझे देखकर कहा, "इनमें कुछ नहीं बचा है, इन्हें घर ले जाओ, अब ये ठीक नहीं हो सकते।" डॉक्टर के ये शब्द सुनते ही मेरी पत्नी ने जोर-जोर से रोना शुरू कर दिया। सब लोग घबरा गए। मेरा दोस्त मुदस्सिर भी मेरे साथ था। मेरे साथ जो भी लोग थे, इन सब के बहुत अनुरोध/विनती करने पर डॉक्टर मुझे अपने अस्पताल में भर्ती करने के लिए सहमत हो गया। आईसीयू में भर्ती किए जाने के बाद, मेरा इलाज शुरू किया गया।

जी.बी.सिन्ड्रोम बीमारी में गामाबीन नामक इंजेक्शन लगाया जाता है। यह इंजेक्शन ड्रिप के जरिए लगाया जाता है। एक गामाबीन इंजेक्शन को लगाने में लगभग 2-3 घंटे का समय लगता है। इस इंजेक्शन की एक बूंद जैसे ही मेरे शरीर में प्रवेश करती थी, तो ऐसा लगता था कि मानो किसी ने आंखों में तेजाब डाल दिया हो। जब तक यह इंजेक्शन लगता था, आंखों से आंसू बहते रहते थे। इसी दौरान डॉक्टर महाजन मेरे पास आया और उसने कहा, "मिस्टर खान क्या आपको ऐसा लग रहा है कि आपके शरीर के अंदर खून जम रहा है।" मैंने कहा, "जी, हाँ। मुझे ऐसा एहसास हो रहा है कि मेरे शरीर के अंदर खून जम रहा है"। डॉक्टर ने फिर कहा, "अगर आपको लगे कि आपकी कमर से ऊपरी भाग में खून जम रहा है और यह खून जमना सीने तक पहुंच गया है, तो तुरंत मुझे बताना, क्योंकि उसके बाद, इस बीमारी से रिकवरी संभव नहीं है।" जबकि मुझे ऐसा एहसास हो रहा था कि मेरा खून सीने तक जम गया था, मुझे पता था कि अगर मैंने यह बात डॉक्टर को बता दी, तो वह तुरंत मेरी छुट्टी कर देगा। जब भीडॉक्टर आकर पूछता था, तो मैं यही कहता था कि मैं ठीक महसूस कर रहा हूं।

डॉक्टर महाजन का कहना था कि यदि गामाबीन एक इंजेक्शन स्वस्थ व्यक्ति को लगा दिया जाए, तो वह घोड़े की तरह दौड़ेगा। मेरे 16 इंजेक्शन लगने के बाद भी, शरीर में ताकत नहीं आई। मेरा पूरा शरीर पावरलेस हो गया था। तकरीबन 15 दिनों तक आईसीयू/अस्पताल में भर्ती रहने के बाद, डॉक्टर ने कहा, "अब मिस्टर खान खतरे से बाहर हैं, यह बच तो गए लेकिन जीवन में कभी भी पैरों पर खड़े नहीं हो सकते और न ही चल सकते हैं। इनको घर ले जाओ। अब इलाज कराने का कोई फायदा नहीं।" डॉक्टर के ये शब्द सुनकर, मेरी पत्नी बहुत ज्यादा परेशान हो गई, लेकिन मुझे 'ऊपर' वालेपर पूरा भरोसा था। मैंने सोचा कि "डॉक्टर नाखुदा है, खुदा तो नहीं"

10 जनवरी, 2008 को अस्पताल से छुट्टी किए जाने के बाद मेरे ससुराल वाले मुझे अपने घर ले गए और जैसाकि डॉक्टर ने बताया कि "यह जीवन में कभी चल-फिर नहीं सकते", इसलिए उन्होंने मुझे घर पर रखना बेहतर समझा। इस दौरान, मैं तकरीबन छह महीने तक अपनी ससुराल में रहा। इस अवधि में, मैंने जो-जो परेशानियां झेली उनका वर्णन करना संभव नहीं है। मैं ऊपर वाले से दुआ करता हूं कि जो परेशानियां मैंने उठाईं हैं, वह किसी दुश्मन की जिंदगी में भी न आएं। मैं इस बीमारी में इतना लाचार हो गया था कि मैं अपने ऊपर बैठी हुई मक्खी को भी नहीं हटा सकता था। मैं दिन भर बिस्तर पर पड़ा रहता था। बिस्तर पर ही मुझे पेशाब कराया जाता था। टॉयलेट के लिए एक प्लास्टिक की कुर्सी के बीच में एक बड़ा सा छेद किया गया था। कुर्सी पर मेरा साला मुझे बिठाता था और मैं उस पर टॉयलेट करता था। मेरी पत्नी सुबह मुझे दीवार के सहारे बिठलाकर ब्रश कराती, नाश्ता कराती और बाद में दवा देकर फिर स्वयं नाश्ता करती थी। 10-15 दिनों में एक बार नाई को बुलाकर शेविंग करा देती थी। इस दौरान कोई कहता कि फलां जगह हकीम को दिखा लो, फलां जगह वैद्य को दिखा लो, जहां-जहां लोगों ने बताया, मेरे लिए दवा मंगवाई गई, लेकिन किसी की दवा से कोई फायदा नहीं हुआ। इसी बीच, तकरीबन छह माह बाद, मेरे पीर मुर्शिद(आध्यात्मिक गुरू), जिनका मेरे स्वस्थ होने में बहुत बड़ा योगदान है, ने बताया कि लखनऊ में एक फीजियोथैरापी कालेज है जहां काले खां ठीक हो सकते हैं। मुझे लखनऊ स्थित ओ.पी.चौधरी फीजियोथैरापी कालेज ले जाया गया और वहां पर कालेज के प्रभारी डॉक्टर ने मेरा चैक-अप किया और कहा, "मैं इनको खड़ा कर सकता हूं और चला सकता हूं, परंतु इसमें तीन महीने का समय लगेगा।"

अन्य कोई विकल्प उपलब्ध न होने के कारण, मुझे उक्त अस्पताल में भर्ती करा दिया गया। इस अस्पताल में मुझे पांचवीं मंजिल पर कमरा दिया गया और बेसमेंट में फीजियोथैरापी ओ.पी.डी. थी। रोजाना सुबह 10 बजे मुझे वहां व्हील चेयर की सहायता से ले जाया जाता था। अस्पताल में पहले दिन, बेसमेंट में ले जाने के बाद, मुझे नीचे फर्श पर बिछे गद्दों पर लिटाया गया और कालेज के प्रमुख डॉक्टर विद्यार्थी के एक दल के साथ मेरे पास आए और बोले, "देखो! स्टूडेंट्स, मैं आप सब को आज एक जिंदा लाश दिखाता हूं।" यह सुनकर मुझे बहुत बुरा लगा। परंतु मैं उस समय कुछ नहीं कह सका। उसके बाद मेरा इलाज शुरू हुआ। डॉक्टरों की लगभग दो महीने की कड़ी मेहनत के बाद, मैं दीवार के सहारे नीचे फर्श पर खड़े होने में सक्षम हो गया।

लखनऊ में मुझे कई तरह की परेशानियां आ रही थी जैसेकि रोजाना सुबह 7 बजे मेरी पत्नी को अस्पताल के बाहर सड़क पार करके चाय लाना पड़ती थी और इसके अलावा अस्पताल का खाना भी मुझे माफिक नहीं लग रहा था। इसी बीच मैं वॉकर की मदद से थोड़ा-बहुत चलने लगा। तदुपरांत, मैं वहां से आकर बरेली में अपनी ममेरी बहन के घर रहकर इलाज कराने लगा। बरेली में एक फीजियोथैरापिस्ट सुबह 7 बजे मेरे घर पर आकर मेरी फीजियोथैरापी कराता था, उसके बाद मुझे मेरी पत्नी एक अस्पताल में ले जाती थी और वहां पर तकरीबन 2-2.30 घंटें तक मेरी फीजियोथैरापी होती थी। शाम को एक्यूप्रेशर करवाने के लिए जाना पड़ता था। इसके अलावा न्यूरोलॉजिस्ट का इलाज भी चलता रहा।

इस प्रकार 4 डॉक्टरों/फीजियोथैरापिस्ट का 8 महीने तक लगातार इलाज चलता रहा जिसमें सबसे पहले मैंने एक शिशु की तरह घुटनों के बल चलना सीखा। उसके बाद मैं वॉकर/स्टिक से चलने लगा। इस दौरान मुझे कितना संघर्ष करना पड़ा, इसका वर्णन करना शायद संभव नहीं है। जब मैं स्टिक की मदद से चलता था, तो मेरे पैर के नीचे छोटा सा कंकड़ आने/ संतुलन बिगड़ने पर, मैं धड़ाम से गिर पड़ता था। गिरने के बाद, उठना मेरे वश में नहीं था। मुझे उठाने के लिए मेरी पत्नी को अन्य लोगों की सहायता लेनी पड़ती थी।

इस सब के दौरान, मैंने कभी भी हिम्मत नहीं हारी। मैं सकारात्मक विचारों का व्यक्ति हूं और अपने आस-पास के लोगों को भी सकारात्मक सोच रखने की सलाह देता हूं। एक प्रसिद्ध अमेरिकी उपन्यासकार, एरनेस्ट हेमिंगवे के उपन्यास, 'The OldMan And The Sea' की एक लाइन हमेशा मेरे दिमाग में रहती है कि, "A man can be destroyed but not defeated." जो कुछ हमारे वश में नहीं है, उसे हम बदल नहीं सकते, लेकिन हिम्मत हार कर बैठ जाना कहां की समझदारी है ?

मुसीबतों से घबरा जाना और घबराकर जिंदगी में हार मान लेना,
हार मानकर बैठ जाना, जिंदगी का फलसफा नहीं।
मुसीबतों में गिरना और गिरकर उठना,
उठकर अपने को फिर संभाल लेना ही मकसद जिंदगी है।

इस पूरे घटनाक्रम के दौरान, मेरे दोनों मासूम बच्चों की देखभाल करने वाला कोई नहीं था। मेरी पत्नी पूरे दिन मेरी सेवा में लगी रहती थी। उस समय मेरी बेटी की उम्र लगभग 5 वर्ष थी। मगर मेरा मासूम बेटा केवल 2 वर्ष का था। मेरी बीमारी के कारण मेरा बेटा अपनी मां के प्यार से वंचित रहा। वह रोता रहता था और सबसे बड़ी परेशानी थी वह यह कि मेरे बेटे के दिल में 2.5 मिमी का छेद था जिसके कारण उसे जरा-सा गुस्सा आने पर वह बेहोश हो जाता था। बेहोश होने पर उसको होश में लाने के लिए उसे कंधे पर रखकर थपकी देना पड़ती थी। इसमें कई मिनट का समय लगता था और जब वह होश में आता था, तो ऐसा बर्ताव करता था कि वह किसी नई जगह आ गया हो।

इसी बीच मेरे कार्यालय/श्रम एवं रोजगार मंत्रालय से बार-बार कार्यालय-ज्ञापन आ रहे थे और ड्यूटी पर लौटने का दबाव बढ़ रहा था। अंततः 02 फरवरी, 2009 को मैंने अपना कार्यभार पुनः ग्रहण कर लिया और इस प्रकार, बीमारी के कारण, 404 दिनों तक मैं छुट्टी पर रहा और ऊपर वाले का शुक्र है कि अब मेरा स्वास्थ्य पहले की तरह न सही, पर सामान्य हो गया है। मेरे पीर मुर्शिद, मेरी सास और मेरी पत्नी की दुआओं के कारण ही आज मैं स्वस्थ हो सका हूं।

बचपन

राजराजेश्वरी भट

एक बचपन का जमाना था।
जिसमें खुशियों का खजाना था।।

चाहत चाँद को पाने की थी।
पर दिल तितली का दिवाना था।।

खबर न थी कुछ सुबह की।
न शाम का ठिकाना था।।

थक हार के आना स्कूल से।
पर खेलने भी जाना था।।

माँ की कहानी थी।
परियों का फ़साना था।।

बारिश में कागज़ की नाव थी।
हर मौसम सुहाना था।।

हर खेल में साथी थे।
हर रिश्ता निभाना था।।

गम की जुबान न होती थी।
न ज़ख्मों का पैमाना था।।

रोने की वजह न थी।
न हंसने का बहाना था।।

क्यों हो गए हम इतने बड़े।
इससे अच्छा तो वो बचपन का ज़माना था।।

डॉ. विक्रम साराभाई

जयंतिका मुखर्जी

बहुमुखी प्रतिभा के धनी डॉ. विक्रम साराभाई का जन्म उद्योग नगरी अहमदाबाद में 12 अगस्त 1919 को हुआ। उनके पिता अंबालाल साराभाई एक बड़े उद्योगपति थे और सामाजिक कार्यों के लिए भी जाने जाते थे।

अंबालाल साराभाई और उनकी पत्नी सरला देवी के 8 बच्चे थे। प्रगतिशील दंपत्ति परिवार में जब पहली संतान लड़की हुई तो स्वयं का स्कूल खोला। एक के बाद एक उनके 8 बच्चे उसी स्कूल में पढ़ते रहे। अमीरी का आलम यह था कि उनके 8 बच्चों को उस समय आधुनिक माने जाने वाली मांटेशरी शिक्षा पद्धति से शिक्षा दी गई और एक समय 13 शिक्षक उनके 8 बच्चों की पढ़ाई के लिए नियुक्त थे। जिनमें से 3 यूरोप से पीएचडी धारक थे और तीन ग्रेजुएट थे। दो-दो शिक्षक आंध्र और बंगाल से आये थे जो कला के विशेषज्ञ थे। इनमें से एक को गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर ने खुद चुना था। इनके बच्चे पढ़ाई अपने स्कूल में करते और परीक्षा सरकारी स्कूल में देते थे।

उस समय की जानी-मानी हस्तियां गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर, मोतीलाल नेहरू, श्रीनिवास शास्त्री, जवाहरलाल नेहरू, सरोजनी नायडू, सीएफ एंड्रयूज, सीवी रमन जैसे महान लोग उन दिनों अहमदाबाद आते तो साराभाई परिवार में ही रुकते थे। बेहतर शिक्षा और महापुरुषों के सान्निध्य ने बालक विक्रम पर बचपन से ही गहरा असर डाला। उनकी बुद्धि कुशाग्र होती गई। और आध्यात्मिक विषयों में रुचि बढ़ती गई।

बचपन से ही विक्रम साहसी भी थे। साइकिल चलाना सीखा और करतब भी दिखाए। वह पास के तालाब में नौका भी चलाते थे और एक बार डूबते-डूबते बचे।

गणित और विज्ञान में उनकी बहुत रुचि थी। वह वैज्ञानिकों की जीवनी भी पढ़ते थे और नई-नई खोजों के बारे में जानकारी एकत्रित करते थे। बचपन से ही परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त करते रहे। सन् 1935 में उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा पास की। उच्च शिक्षा के लिए गुजरात कालेज में नामांकन कराया। भौतिकशास्त्र में उनकी रुचि अधिक थी।

स्नातक की पढ़ाई के लिए वह कैंब्रिज गए। मात्र 20 वर्ष की आयु में उन्होंने कैंब्रिज विश्वविद्यालय से ट्राइपोस की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। 1940 में उन्होंने गणित और भौतिक शास्त्र में बी.ए. की परीक्षा पास कर ली।

उसी समय दूसरा विश्वयुद्ध आरम्भ हो गया। विक्रम साराभाई भारत लौट आए। यहां आकर उस समय की सबसे बड़े वैज्ञानिक संस्था इंडियन इंस्टीटयूट में अनुसंधान करना शुरु कर दिया। उस समय भौतिक शास्त्र के विभागा अध्यक्ष डा. सी.वी. रमन थे। नोबल पुरस्कार विजेता डा. रमन ने साराभाई को अपने निर्देशन में अनुसंधान कराना प्रारंभ किया।

इत्तेफाक से होमी जहांगीर भाभा भी उन दिनों वहीं पर मेसान और कॉस्मिक किरणों पर अनुसंधान कर रहे थे। इलेक्ट्रान, प्रोटोन और न्यूट्रान से अलग मेसान में लोगों की रुचि बढ़ रही थी। कॉस्मिक किरणों से पैदा होने वाले मेसान उन दिनों नई चीज थी।

विक्रम साराभाई चल रहे उस समय स्वतंत्रता आंदोलन से भी प्रभावित थे जो अपने पूरे शबाब पर था। उन्होंने दो साल तक मौसम विज्ञान पूना से शोध कार्य किया। इसी बीच उन्होंने कॉस्मिक किरणों की तीव्रता में परिवर्तनों की खोज की। उनका पहला वैज्ञानिक लेख कॉस्मिक किरणों की तीव्रता में परिवर्तन पर था। वह 1942 में बंगलौर से निकलने वाली वैज्ञानिक पत्रिका में छपा। इससे आगे चलकर अंतरिक्ष में ग्रहों के बीच की दूरी के अध्ययन करने सूर्य और पृथ्वी के संबंध में और पृथ्वी के आकर्षण शक्ति के अध्ययन में सहायता मिली। 1943 में वह कश्मीर स्थित हिमालय की चोटियों पर कॉस्मिक किरणों का अध्ययन करने के लिए गए। उनका मन नई-नई खोजों के लिए कल्पना की उड़ाने भर रहा था।

सन् 1945 में विश्व युद्ध समाप्त हुआ तो विक्रम साराभाई फिर से कॉस्मिक किरणों पर अध्ययन करने के लिए कैंब्रिज गए और 1947 में उन्होंने पी.एच.डी. की डिग्री की हासिल की। इतने कम समय में शोध कार्य पूरा करने का कारण यह भी था कि उनका परिवार इससे पहले हर गर्मी में कश्मीर जाया करता था। वहां पर साराभाई कॉस्मिक किरणों पर अनुसंधान किया करते थे। उस पूरे कार्य को उनकी थिसिस में सम्मिलित कर लिया गया था।

भारत प्रेम के कारण वह जल्दी वापस आए और अहमदाबाद स्थित भौतिकशास्त्रिय अन्वेषण प्रयोगशाला में कार्य करने लगे। उस समय वहां बहुत कम छात्र थे और प्रयोगशाला सहायकों की संख्या भी बहुत कम थी। परन्तु धीरे-धीरे यहां काम करने वाले की संख्या और काम दोनों बढ़ते चले गए।

वह यह भी मानते थे कि देश के औद्योगिक विकास के लिए चौमुखी प्रयासों की आवश्यकता है। उन्होंने अहमदाबाद में टेक्सटाइल इंडस्ट्रीज रिसर्च एसोसिएशन की आधारशिला रखी। जिससे वस्त्र उद्योग द्वारा अनुभव की जाने वाली तकनीकी समस्याओं का हल देश में ही निकलने लगा। साराभाई ने अहमदाबाद स्थित अपने प्रयोगशाला में परमाणु शक्ति, कंप्युटर तकनीकी और अंतरिक्ष विकिरण, सूर्य ग्रह, तारा प्लाज्मा, भौतिकी, भौतिकी खगोल विद्या आदि पर कार्य किया। उन्होंने देश के अनेक भागों में अन्वेषण संस्थान खोलने में योगदान किया।

1961 में डा. विक्रम साराभाई परमाणु ऊर्जा उद्योग के सदस्य बनाए गए। वह अत्यंत नम्र और सरल थे। वैज्ञानिक होने के साथ-साथ कुशल प्रशासक भी थे। सादी वेषभूषा वाले साराभाई सौंदर्य के प्रेमी थे। पर्वतीय इलाकों का सौंदर्य इन्हें बहुत रास आता था। वह उन वैज्ञानिकों में से नहीं थे जो एकांत में प्रयोगशाला में रहकर अनुसंधान करते थे। उन्होंने मृणालिनी स्वामीनाथन नामक भारत विख्यात शास्त्रीय नर्तकी से 1942 में विवाह किया। उनके पुत्र का नाम था कार्तिकेय और पुत्री का नाम था मल्लिका। मल्लिका साराभाई के कालांतर में सुप्रसिद्ध नर्तकी और फिल्म अभिनेत्री बनी। विक्रम साराभाई अपने परिवार के कार्यों में लगातार सहयोग देते रहते थे।

खासे व्यस्त होने पर भी वह कला, शिक्षा, समाजसेवा आदि में रुचि लेते थे। जनसाधारण में विज्ञान के प्रति रुचि जगाने के लिए उन्होंने 1963 में अहमदाबाद में लोक विज्ञान केंद्र तथा नेहरू विकास संस्थान की स्थापना की।

साराभाई का मानना था कि भारत के विकास के लिए उद्योग का विस्तार आवश्यक है। उन्होने खुद साराभाई केमिकल के नाम से औषधि उद्योग की स्थापना की। जहां रसायन तथा औषधियां बनाए जाने लगी। उन्होने उद्योंगों में शोध और विकास कार्य प्रारंभ करवाये। जिससे उत्पादन में निरंतर उच्च गुणवत्ता बनी रहे।

वह ऐसे प्रथम भारतीय वैज्ञानिक थे। जिन्होंने रिकॉर्ड रखने विश्वेषण करने और औद्योगिक कार्य करने के लिए कंप्युटर की इस्तेमाल की परंपरा प्रारंभ की । उन्होने परंपरागत टेक्सटाइल उद्योग में वैज्ञानिक तरीकों का समावेश किया और उन्हें आधुनिक बनाया। इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट की स्थापना में भी उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा। आम जनता में भी विज्ञान विषयक जानकारी पहुंचाने के लिए उन्होंने कम्युनिटी साइंस सेंटर की स्थापना करवाई।

अंतरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में किया गया उनका कार्य अद्वितीय था। उन्होंने अंतरिक्ष वैज्ञानिकों का एक दल तैयार किया और थुंबा

डॉ विक्रम साराभाई प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी अन्य अन्य गण्यमान्य अतिथियों के साथ

स्थित रॉकेट लांचिंग स्टेशन की स्थापना की। बाद में उन्होंने मद्रास स्थित श्री हरिकोटा में दूसरा रॉकेट प्रक्षेपण केंद्र बनवाया।

जब 1966 में डा. होमी जहांगीर भाभा की असमय मृत्यु हो गई तो पूरा देश चिंतित हो उठा कि इनके द्वारा प्रारंभ की गई महत्वाकांक्षी योजनाओं को कौन पूरा करेगा। भारत सरकार ने यह दायित्व डा. साराभाई को सौंपा। उन्होंने देश को परमाणु ऊर्जा के क्षेत्र में नई दिशा प्रदान की और इसके शांतिपूर्ण उपयोग के लिए अनके प्रयास प्रारंभ किए।

आज आकाश में भारत के बने उपग्रह तैर रहे हैं और उनके जरिए हमारे देश में दूरसंचार, दूरदर्शन और मौसम विज्ञान आदि के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति हुई है, उन्हें प्रारंभ करने वाले डा. विक्रम साराभाई ही थे। वह भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान केंद्र के प्रथम अध्यक्ष बने। सन् 1975 में पहला भारतीय अंतरिक्ष उपग्रह आर्यभट्ट छोड़ा गया था। उसकी रचना भी उनके अहमदाबाद स्थित केंद्र में ही हुई थी।

सरकार और समाज दोनों ने ही डा. विक्रम साराभाई के कृतित्व को माना और सराहा। सन् 1962 में उनको डा. शांतिस्वरूप भटनागर मेमोरियल पुरस्कार मिला।

सन् 1966 में भारत सरकार ने पद्मभूषण की उपाधि प्रदान किया। वह भारत सरकार की ओर से तमाम महत्वपूर्ण संस्थाओं में भाग लेते रहे। सन् 1966 में वह इंटरनेशन काउंसलिंग ऑफ साइंटिफिक यूनियन के सदस्य बने। सन् 1968 में वह संयुक्त राष्ट्र संघ में यूनेस्को के विज्ञान विभाग के अध्यक्ष बनाए गए। सन् 1970 में इंडियन जियोलोजिकल यूनियन के प्रमुख बनाए गए तथा उसी साल बियेना में हुई अंतरराष्ट्रीय अणु मंच की 14वीं परिषद के प्रमुख बनाए गए। सन् 1971 में संयुक्त राष्ट्र परिषद के उपाध्यक्ष और फिर विज्ञान विभाग के अध्यक्ष भी चुने गए।

डा. विक्रम साराभाई ने अपने कड़े परिश्रम, लगन और निष्ठा से गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर की भविष्यवाणी सार्थक कर दी थी। वह एक यशस्वी और महान वैज्ञानिक के रूप में देश-विदेश में विख्यात होने लगे थे। देश के परमाणु ऊर्जा और अंतरिक्ष अनुसंधान दोनों का भार उनके मजबूत कंधों पर था।

सन् 1971 में जब वह मात्र 52 वर्ष और 5 महीने के थे, 20 दिसंबर को त्रिवेंद्रम के पास रॉकेट लांचिंग स्टेशन थुंबा में निरीक्षण के लिए गए थे, वहीं होटल के कमरे में ह्रदय गति रुक जाने से उनका असमायिक निधन हो गया।

देश के लिए यह एक गंभीर आघात था। कृतज्ञ राष्ट्र ने सन् 1972 में उन्हें मरणोपरान्त पद्मभूषण से नवाजा।

डा. विक्रम साराभाई की स्मृति में विज्ञान के विविंध क्षेत्र में रॉकेट उपग्रह,संचार, मौसम विज्ञान, खगोल भौतिकी, उपग्रह सुदूर, संवेदन, खगोल विज्ञान, अंतरिक्ष, आयुर्विज्ञान, अंतरिक्ष उपयोग, हवाई सर्वेक्षण, भू-गणित तथा अंतरिक्ष इंजीनियरिंग में विशिष्ट अनुसंधानकर्त्ता और लेखकों को डा. विक्रम साराभाई स्मारक पुरस्कार दिए जाते हैं। देश के सुपुत्र को कोटि-कोटि नमन!

डा. बीरबल साहनी

श्रीनिवास सिन्हा

वनस्पति के पुराने इतिहास का गहन अध्ययन करने व संसार को रोचक जानकारियों से मुग्ध करने वाले डा. बीरबल साहनी का जन्म पश्चिमी पंजाब (आजकल पाकिस्तान) के शाहपुर जिले के भेड़ा ग्राम में प्रो. रुचिराम साहनी के घर में 14 नवंबर 1891 में हुआ था। उनका परिवार पहले उत्तर-पश्चिमी सीमा- प्रांत छोड़कर भेड़ा आकर बसा था। वह श्री रुचिराम साहनी की तीसरी संतान थे। उनके पिता रसायनशास्त्र के प्राध्यापक थे।

भेड़ा दरअसल नमक की पहाड़ियों और चट्टानों से घिरा हुआ और भूगर्भ विज्ञान के अजायबघर कीतरह दिखने वाला गांव था। बालक बीरबल का लालन पालन इस सुंदर, रमणीक वातावरण में हुआ। उन्हें बचपन से ही जीवाश्म आदि देखने का अवसर मिला।

रुचिराम साहनी ने अपने घर में भी वैज्ञानिक और बौद्धिक वातावरण बना रखा था। विद्वान, शिक्षाशास्त्री और समाजसेवी प्रो. रुचिराम साहनी अपने बेटे बीरबल की वैज्ञानिक रुचियों को बचपन से ही बढ़ाते रहे। बालक बीरबल भी बचपन से ही प्रकृति का पुजारी था। वह बचपन से ही पर्वत - शृंखलाओं की प्राकृतिक शोभा को निहारा करता था। आसपास के रमणीक जंगल, पेड़-पौधे, चट्टानें, दूर-दूर तक फैली सफेद पर्वत चोटियां बीरबल की सुध-बुध भुला देती थीं। वह अकसर आसपास के देहाती इलाकों में सैर-सपाटे के लिए निकल जाते थे।

उन्होंने लाहौर के सेंट्रल मॉडल स्कूल में शिक्षा ग्रहण किय था। वह उच्च शिक्षा-प्राप्ति के लिए राजकीय महाविद्यालय गए। प्रसिद्ध वनस्पतिशास्त्री प्रो. शिवराम कश्यप का उन पर वरहस्त था। सन् 1911 में उन्होंने विश्वविद्यालय से बी.एस-सी. की परीक्षा पास की।

उन दिनों आजादी की लड़ाई चल रही थी। बीरबल उसमें भी भाग लेना चाहते थे परन्तु उनके पिता उच्च शिक्षा दिलाकर आई.सी.एस. बनाना चाहते थे। बीरबल को वनस्पतिशास्त्र में रुचि थी और वह जानना चाहते थे कि वृक्ष धरती में दबकर पत्थर जैसे कठोर कैसे बन जाते हैं।

अंततः वह इंग्लैंड चले गए जहां उन्होंने 1916 में स्नातक उपाधि प्राप्त किया। आगे उन्होंने प्रो. ए.सी. सिवार्ड के निर्देशन में शोध-कार्य किया जो उस समय श्रेष्ठ वनस्पति-विशेषज्ञ थे। वह म्यूनिख भी गए और वहां पर उन्होंने प्रसिद्ध वनस्पतिशास्त्री प्रो. के. घोनल के निर्देशन में शोध किया। उनका पहला शोध-पत्र न्यू फाइटोलोजेस्ट नामक वनस्पति विज्ञान की पत्रिका में सन् 1915 में छपा था।

इस शोध-पत्र से उनका प्रभाव काफी बढ़ा। लोगों ने जाना कि उनकी विश्लेषण करने की क्षमता और गहरी दृष्टि गजब की है। उसी साल उनका दूसरा शोध-पत्र भी छपा, जो निफ्रोलपेस वालियोबेलस के

मिश्रित विश्लेषण से संबंधित था।इसमें उन्होंने अजीब किस्म के फर्न के बारे में बताया जिसके मादा पौधे से लंबी-लंबी बेलें निकलती हैं और वह जंगली पौधों पर चढ़ जाती हैं। इन बेलों में बीच-बीच में नई शाखाएं निकल आती हैं और मादा पौधों से ऊंची उठ जाती हैं।

प्रो. शाहनी ने इस बेल की मिश्रित प्रक्रिया का अध्ययन किया और बतलाया कि किस प्रकार नई शाखा से निकलने वाले पौधे नई शक्ल अख्तियार करते हुए जालनुमा बन जाते हैं।

आगे उनका शोध कार्य जारी रहा। उन्होंने क्लीविल्स में शाखाओं के विकास पर एक शोध-पत्र लिखा और सिडबरी हार्डी मैन पुरस्कार के लिए भेजा। बाद में यह लेख भी न्यूफाइटोलोजेस्ट में सन् 1917 में छप गया।

विदेश में उन्होंने अपनी पढ़ाई माता-पिता से आर्थिक सहायता लेकर नहीं किया। उन्हें लगातार छात्रवृत्ति मिलती रही और रॉयल सासोइटी ने उन्हें शोध-हेतु सहायता दिया। इस दौरान वह तमाम जाने-माने वैज्ञानिकों के संपर्क में भी आए।

जब उन्होंने फासिल-प्लांट्स (प्रस्तरीभूत वृक्ष) विषय पर शोध-प्रबंध पूरा किया। तब उन्हें लंदन विश्वविद्यालय ने डाक्टरेट की उपाधि से उन्हें विभूषित किया।

विदेश में रहकर आधुनिकतम विषयों पर गहन शोध करने वाले बीरबल साहनी के अंदर देशप्रेम की भावना कूट-कूटकर भरी थी। पढ़ाई पूरी करने के बाद जब वह 1919 में भारत आए तो महामना मालवीय से प्रेरणा पाकर सीधे बनारस हिंदू विश्वविद्यालय गए और वनस्पतिशास्त्र के प्राध्यापक नियुक्त हुए।

सन् 1920 में उनका विवाह सावित्री नामक युवती से हुआ जो पंजाब के प्रतिष्ठित रायबहादुर सुंदरदास की बेटी थीं। सावित्री ने बीरबल साहनी का जीवन और आसान कर दिया और वह उनके शोध-कार्यों में भी सहयोग किया करती थीं। जीवाश्मों का चित्र बनाने, फोटो खींचने जैसे कार्य भी वह कर लेती थीं।

कुछ दिन बनारस में पढ़ाने के बाद उनकी नियुक्ति लाहौर स्थित पंजाब विश्वविद्यालय में हो गई और उन्होंने वहां भी पढ़ाया। परन्तु शीघ्र ही वह लखनऊ विश्वविद्यालय में नए खुले वनस्पतिशास्त्र विभाग के अध्यक्ष नियुक्त हो गए और लखनऊ आ गए।

डा. बीरबल साहनी ने पहले जीवित वनस्पतियों पर शोध किया। फिर उन्होंने भारतीय वनस्पति-अवशेषों पर अध्ययन प्रारंभ किया। उन्होंने फॉसिल बजरहों और जीरादानों पर शोध की पहल की, जो पहले जेरियत के नाम से जाना जाता था। उन्होंने यह साबित किया कि असम तीसरे युग की मृदु वनस्पतियों से भरपूर था। उनका प्रयास भारत में मौजूद फॉसिल बजरहों के वर्गीकरण की समस्या का हल निकालने का था। वह भारतीय फॉसिल बजरहों और जीरादानों का अग्रणी भंडार कायम करना चाहते थे, ताकि फॉसिल के तुलनात्मक अध्ययन के जरिए शोध-कार्य आगे बढ़ा सकें।

उन्होंने भारत में कोयले के भंडारों में संबंध स्थापित करने के लिए कोयले में मिलने वाले फॉसिल बजरहों तथा जीरादारों का बाकायदा एक तंत्र स्थापित करने के लिए कार्य किया।

ओल्डहाइम, मार्स, फेस्ट मीटल भू-विशेषज्ञों ने पहले राजमहल पहाड़ियों के ऊपरी गौडवानी की क्यारियों पर शोध किया था। बाद में बीरबल साहने ने भी शोध प्रारंभ किया और उनके अजीबगरीब तथा दिलचस्प पौधों के बारे में दुनिया को जानकारी दी। अनेक नई जातियों और वंशों के पौधों का उन्होंने शोध किया।

वह वनस्पति विज्ञान तथा भूमि विज्ञान दोनों के विशेषज्ञ थे और दोनों प्रकार के अद्‌भूत सम्मिक्षण से उन्होंने अनोखे द्विफलीय परिणाम भी हासिल किए। वह प्रयोगशाला के बजाए फील्ड में काम करना ज्यादा पसंद करते थे। उन्होंने वनस्पति विज्ञान के विशेषज्ञों को भारत के पौधे वाली चट्टानों के बारे में नवीनतम जानकारी दी। उन्होंने खेवड़ा की नमक श्रृंखलाओं से लेकर बिहार की राजमहल पहाड़ियों और दक्षिण की इंटर टॉफिन प्लेटो की यात्रा किया और एक नोटबुक में जानकारी दर्ज करते रहे तो दूसरी ओर, कैमरे से उनके फोटो भी खींचते रहे।

उन्हें सन् 1933 में लखनऊ विश्वविद्यालय में डीन पद नियुक्त किया गया। जब सन् 1943 में लखनऊ में भूगर्भ स्थापित हुआ तो वह उसके आचार्य नियुक्त किए गए।

प्रो. शाहनी एक कुशल अध्यापक थे। वह न सिर्फ अच्छा पढ़ाते थे बल्कि अपने अनुसंधान को कुशलतापूर्वक जनता के सामने रखने में भी सक्षम थे। अपने विषय पुरा-वनस्पति, जिसे अंग्रेजी में पेलियो बॉटनी कहते हैं, उसे वह बड़े रोचक ढंग से समझाते थे। वह आसानी से बता देते थे कि मिट्टी में दबे जीवाश्म-अवशेष की आयु क्या है और इसका विकास कैसे हुआ होगा। गड़े पत्थरों से उन्होंने इतिहासविदों द्वारा प्रतिपादित महाद्वीपों के विभाजन के सिद्धांत का अध्ययन किया। उनका भाषा पर गजब का अधिकार था। उन्होंने हड़प्पा, मोहनजोदड़ो व सिंधु-घाटी की सभ्यता के बारे में अनेक परिणाम निकाले।

एक बार रोहतक टीले के एक भाग पर उन्होंने हथौड़ा मारा और उससे प्राप्त अवशेष का अध्ययन करके बता दिया कि जो जाति यहां पहले रहती थी, वह विशेष प्रकार के सिक्कों को ढालना जानती थी। उन्होंने वह सांचे भी प्राप्त किए जिनसे सिक्के ढलते थे।

बाद में उन्होंने दूसरे देशों में सिक्के ढालने की तकनीक का भी विशेष अध्ययन किया। उन्होंने चीन, रोम, उत्तरी अफ्रीका में सिक्के ढालने की तकनीक का अध्ययन किया। उन्होंने यह भी साबित कर दिया कि रोम के जमाने से 100 साल पहले भारत में सिक्के ढालने का सांचा था और वह उच्चस्तरीय था। इस संबंध में उनका एक लेख 1945 में इंडियन सोसाइटी की एक पत्रिका में प्रकाशित हुआ था।

बीरबल साहनी अपने विषय रूकाजी वनस्पति के प्रकांड विद्वान थे पर वह अपना ज्ञान अपने तक सीमित नहीं रखना चाहते थे और चाहते थे कि अन्य वैज्ञानिक भी इस दिशा में आगे आएं। जब वह विज्ञान संकाय के डीन नियुक्त हुए तो उन्हें विशेष भत्ता मिलने लगा। उन्होंने इस भत्ते का अपने लिए प्रयोग नहीं किया वरन् शोध-कार्य करने वालों को अपने पिता प्रो. रुचिराम साहनी के नाम पर पुरस्कार के रूप में देना प्रारंभ किया। वह छात्र जो वनस्पति विज्ञान की इस शाखा से संबंधित शोध-लेख लिखता था, वह इस इनाम को प्राप्त करता था।

बीरबल साहनी हमेशा खादी का साफ-सुथरा पाजामा, सफेद, शेरवानी, और गांधी टोपी पहना करते थे। वह हमेशा प्रसन्नचित रहते थे और संतोष, न्यायप्रियता, शराफत और उदारता उनके व्यक्तित्व के विशेष अंग थे। वह अपने ज्ञान भंडार को बांटने के लिए हमेशा तैयार रहते थे। जब बाद-विवाद होता तब वह अपनी बात पर दृढ़ रहते थे परन्तु हठधर्मी तो उनमें बिल्कुल न थी। व्यंग्य करने दूसरों को आहत करने से हमेशा बचने वाले बीरबल साहनी विनोदी स्वभाव के थे। अगर उनके शोध से किसी परिणाम पर संदेह होता था तो वह हर प्रकार का संशोधन सुन एवं सह लेते थे। झूठी शान से वह दूर रहते थे।

सन् 1939 में उनकी इच्छा पुरा-वनस्पति विज्ञान संस्थान स्थापित करने की हुई। उस समय तक वह इस विषय के ख्यातिप्राप्त वैज्ञानिक बन चुके थे। इस दिशा में काफी प्रयास करने के बाद वह संस्थान के लिए आवश्यक संसाधन जुटा पाए। 3 अप्रैल 1945 को पंडित जवाहरलाल नेहरू ने इसकी आधारशिला रखी। 1946 में यह बीरबल साहनी संस्थान प्रयोगशाला कायम हुई। इस अनुसंधानशाला की उन्नति के लिए उन्होंने अमेरिका, यूरोप, इंग्लैंड, कनाडा आदि का दौरा भी किया।

आजादी के बाद सन् 1947 में तत्कालीन शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आजाद ने उन्हें भारत सरकार का शिक्षा सचिव बनने का प्रस्ताव किया परन्तु उन्होंने विनम्रतापूर्वक मना कर दिया और अपने संस्थान के विकास में लगे रहे। वह इसके अवैतनिक अध्यक्ष थे।

प्रोफेसर बीरबल साहनी को अनेक बार देश-विदेश में विभिन्न सम्मान व पुरस्कार मिले। वह दो बार 1930 और 1935 में विश्व वनस्पति कांग्रेस की पुरा-वनस्पति शाखा के उपाध्यक्ष नियुक्त हुए। भारत में भी वह दो बार 1921 तथा 1928 में भारतीय विज्ञान कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। इसके अलावा 1937-38 तथा 1943-44 में वह राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी के प्रधान रहे। 1929 में कैंब्रिज विश्वविद्यालय में उन्हें एस.सी.डी. की विशेष उपाधि से विभूषित किया। सन् 1936-37 में प्रतिष्ठित रॉयल सोसाइटी लंदन ने उन्हें अपना फेलो निर्वाचित किया।

सितंबर 1948 में प्रो. साहनी अमेरिका के दौरे से अपना भाषण देकर वापस आए। एक ओर उनकी संस्था के एक भवन की आधारशिला रखने की योजना थी। दूसरी ओर, वह शारीरिक और मानसिक थकान महसूस कर रहे थे। उन्हें सलाह दी गई कि वह विश्राम के लिए अलमोड़ा चले जाएं। पर काम की अधिकता महसूस करते हुए और अपनी संस्थारूपी सपने को साकार होते देख वह नहीं गए और लखनऊ में ही काम में लगे रहे।

3 अप्रैल 1949 को तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू जो उनके अच्छे मित्र थे उन्होंने उनकी संस्था की आधारशिला रखी। बीरबल साहनी की संस्था की आधारशिला 3 फीट लंबे और 2 फीट चौड़े त्रिकोण की शक्ल का एक पच्चीकारी का नमूना थी जिसमें विश्व-भर से प्राप्त खुदाइयों से प्राप्त किए गए जानवरों की हड्डियों के विचित्र ढांचे नगों की भांति जड़ दिए गए थे। इत्तफाक से पंडित नेहरू भी कैंब्रिज में वनस्पति और भूमि विज्ञान के छात्र रहे थे। दोनों का जन्म 14 नवंबर को हुआ था।

इस घटना के एक सप्ताह बाद 10 अप्रैल 1949 को उन्हें दिल का दौरा पड़ा और वह चल बसे। उनके निधन के बाद उनकी पत्नी सावित्री ने उनकी संस्था को संभाल लिया।

उनकी मृत्यु के बाद उनके एक शिष्य प्रो. बी.एस. सदासू, जो मद्रास में वनस्पति विज्ञान की प्रयोगशाला में निदेशक थे, उन्होंने उनकी स्मृति में गोल्ड मेडल देना प्रारंभ किया जो वनस्पति विज्ञान के क्षेत्र में श्रेष्ठ वैज्ञानिक को दिया जाता है।

प्रोफेसर प्रशांत चंद्र महालनबीस

अशोक उबाले

सांख्यिकी के क्षेत्र में विश्व-स्तर का शोध कार्य करने वाले प्रशांत चंद्र महालनबीस का जन्म 29 जून 1893 को कलकत्ता के एक संभ्रांत परिवार में हुआ था। परिवार राजा राममोहन राय द्वारा स्थापित ब्रह्मसमाज का अनुयायी था। उनके पिता प्रबोध चंद्र एक जाने-माने व्यवसायी थे और माता निरोज मृदभाषिणी एक संपन्न परिवार की पुत्री थीं और प्रसिद्ध डाक्टर और उद्यमी सर नीलरतन सरकार की बहन थीं।

छः भाई-बहनों में प्रशांत सबसे बड़े थे। वह ब्रह्म समाज स्कूल में पढ़ने गए, और आगे प्रेसीडेंसी कालेज में पढ़ने अध्ययन किय। 1912 में उन्होंने फिजिक्स आनर्स में बी.एस-सी. की डिग्री हासिल की। 1913 में वह भौतिकी और गणित का अध्ययन करने कैंब्रिज विश्वविद्यालय रवाना हुए। वहां उन्होंने 1914 में गणित ट्राइपोस का पार्ट तथा 1915 में भौतिकी ट्राइपोस का पार्ट उत्तीर्ण किया।

सन् 1915 में वह भारत छुट्टी बिताने आए। उनके साथ कार्ल पियर्सन की पत्रिका बायोमेट्रिका एंड बायोमेट्रिक सी.टी.आर. विल्सन के साथ शोध-कार्य करने का इरादा छोड़ दिया। वह प्रेसीडेंसी कालेज के प्रवक्ता के पद पर नियुक्त हो गए। सन् 1915 में ही उन्होंने इंडियन एजुकेशन सर्विस की परीक्षा में भाग लिया और पास करके अपने ही कालेज में वह प्राध्यापक नियुक्त हुए।

उस समय सांख्यिकी एक प्रचलित विषय नहीं था। प्रशांत को इसमें विशेष रुचि थी। गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर, जो उन्हें बचपन से जानते थे, और उनके मामा नीलरतन सरकार को उनकी रुचि के बारे में पता चला तो उन्होंने उन्हें इस विषय पर आगे काम करने के लिए प्रेरित किया।

27 फरवरी 1923 को प्रशांत का विवाह निर्मल कुमारी से हुआ। भौतिक विज्ञान का अध्यापन करते हुए वह सांख्यिकी में भी काम करते रहे। सन् 1922 में वह कलकत्ता विश्वविद्यालय में भौतिक विभाग के अध्यक्ष नियुक्त किए गए। इससे जाहिर होता है कि वह किस कदर परिश्रम करते रहे होंगे। सन् 1925 में उन्होंने अपना सामान्य दूरी सिद्धांत प्रतिपादित कर दिया। उस समय उन्होंने प्रयोगों की रूपरेखा बनाने का कार्य प्रारंभ किया। वह एक बार संयोगवश कुछ कृषि फार्मों और समानांतर खेतों में बोई गई धान की फसलों के प्रयोगों में उलझ गए। इससे उन्हें लाभ हुआ और उन्होंने एवं रोनाल्ड फिशर ने संयुक्त रूप से प्रयोगशाला और खेतों में किए गए प्रयोगों में अंतर को हासिल किया।

उन्होंने कृषि-कार्यकर्त्ताओं के लिए सांख्यिकीय निबंध लिखे। एक ओर उन्होंने बड़े स्तर पर सैंपलिंग सिद्धांत और व्यवहार का प्रयोग करने की विधि बतलाई। दूसरी ओर सन् 1958 में उन्होंने फ्रैक्टाइल ग्राफिक एनालिसिस विधि निकाली। उन्होंने यह भी पाया कि कृषि-क्षेत्रों में हुए सर्वेक्षणों में अनुमान और वास्तविकता में बहुत अंतर है। उन्होंने इसके कारणों को भी उजागर किया।

प्रशांत ने मौसम विज्ञान और एंथ्रोपोलॉजी (मानव विज्ञान) में भी सांख्यिकी का प्रयोग किया और पाया कि यह बहुत उपयोगी है। उन्होंने कलकत्ता में मौसम विज्ञानी के रूप में सन् 1922 में 26 तक काम किया। धीरे-धीरे वह भौतिकविद् के बजाय सांख्यिकीविद् के रूप में ज्यादा विख्यात होते गए।

सन् 1931 में उन्होंने कलकत्ता में इंडियन जनरल ऑफ स्टेटिस्टिक्स का प्रकाशन प्रारंभ किया। भारतीय विज्ञान कांग्रेस ने महालनबीस के प्रयासों के फलस्वरूप सांख्यिकी को गणित के साथ सन् 1942 में सम्मिलित किया और सन् 1945 में इसे अलग विषय के रूप में मान्यता भी दे दी। वह कलकत्ता विश्वविद्यालय में 1941-45 तक सांख्यिकी के विभागाध्यक्ष भी रहे। वह बंगाल सरकार सांख्यि़की के सलाहकार भी सन् 1945 से 48 तक रहे।

अनेक पदों पर रहकर महत्वपूर्ण कार्य करते हुए प्रशांत महालनबीस ने अंतरराष्ट्रीय स्तर की ख्याति अर्जित की। उन्होंने तीन बड़ी सफलताएं अर्जित कीं, जो इस प्रकार हैं - पहला, महालनबीस दूरी, जिसका अर्थ है जो जनसख्याओं के बीच पृथक्करण की नाप-जोख। यदि हम अपनी सामान्य सूझ-बूझ से दो जनसंख्याओं की औसत ऊंचाई के अंतर से उनकी बीच के फासले को नापना चाहते हैं तो महालनबीस का सुंदर तरीका हमारे काम आता है।

दूसरा योगदान है, प्रयोगों की रूपरेखा बनाने में उनका योग तथा बड़े पैमाने पर सैंपल सर्वे । तीसरा महत्वपूर्ण योगदान, नमूने की जांच-पड़ताल का उनका सिद्धांत और व्यवहार।

प्रशांत मानते थे कि इंजीनियरिंग की भांति सांख्यिकी भी एक व्यावहारिक विज्ञान है और यह गणित पर निर्भर रहता है। उन्होंने न सिर्फ खुद शोध किया वरन् अनेक वैज्ञानिकों को भी अपने नवस्थापित भारतीय सांख्यिकी संस्थान में अनुसंधान करने के लिए प्रोत्साहित किया, जो 1931 में स्थापित किया गया था और वह इसके निदेशक नियुक्त किए गए थे।

प्रारंभ में यह संस्थान प्रेसीडेंसी कालेज कलकत्ता के भौतिकशास्त्र विभाग में स्थित था। बाद में इसका भवन बैरकपूर ट्रंक रोड पर बनाया गया। इसे प्रो. महालनबीस के प्रयासों का ही फल माना जाता है और पंडित जवाहरलाल नेहरू ने इसमें विशेष रुचि ली। वित्तमंत्री भी इसमें दिलचस्पी रखते थे। इस संस्थान ने देश को महान सांख्यिकीविद् प्रदान किए।

डॉ पी सी महल्नाबिस प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू से चर्चा करते हुए

दिलचस्प बात यह है कि नेहरूजी सांख्यिकी में इस कदर रुचि रखते थे कि उन्होंने पीतांबर पंत को, जो स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान उनके सचिव थे, इस संस्थान में सांख्यिकी के अध्ययन के लिए भेज दिया गया। उन्होने प्रो. प्रशांत को संस्थान चलाने में हर तरीके की सहायता किया।

इस संस्थान में उस समय विभिन्न प्रकार की सुविधाएं नहीं थीं, पर फिर भी लोग यहां अध्ययन और शोध करने के लिए आकर्षित होते थे। अनके सांख्यिकीविद् तरह-तरह के फील्ड सर्वे, टैबुलेशन, प्रयोगों के डिजाइन एस्टीमेशन आदि का काम करते रहते थे।

जुलाई 1930 में एक नया प्रशिक्षण विभाग भी खोला गया था जिसमें सन् 1938 में संस्थान के कंप्यूटर सर्टिफिकेट तथा सांख्यि़की में डिप्लोमा करने के लिए व्यावसायिक रूप से एक परीक्षा लेना प्रारंभ कर दिया।

इस संस्थान ने 50-60 के दशक में काफी तरक्की की। नए-नए विभाग खुले और नई-नई योजनाओं पर कार्य हुआ। भारतीय संसद ने 1959 में इसे राष्ट्रीय महत्व के संस्थान के रूप में मान्यता देते हुए संस्थान को उपाधि (डिग्री) देने का अधिकार दे दिया। यहां पर स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर के पाठ्यक्रम प्रारंभ हुए और पी-एच.डी. तक की डिग्री दी जाने लगी।

दूसरी ओर प्रो. महालनबीस सन् 1945 से 48 तक प्रेसीडेंसी कालेज के प्रिंसिपल भी रहे। सन् 1948 में उन्हें कलकत्ता

विश्वविद्यालय का एमेरिटस प्रोफेसर बनाया गया। सन् 1949 में भारत सरकार ने उन्हें अवैतनिक सांख्यिकी सलाहकार नियुक्त किया, सरकार ने केंद्रीय सांख्यिकी यूनिट का गठन किया।

भारत सरकार प्रो. प्रशांत महालनबीस से किस कदर प्रभावित थी, इसका अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि जब केंद्रीय सांख्यिकी संगठन का गठन हुआ तो प्रधानमंत्री और योजना आयोग ने सन् 1954 में उन्हें इस संस्थान में एक महत्वपूर्ण दायित्व सौपा। यहां पर उनके नेतृत्व में राष्ट्रीय आय बढ़ाने और बेरोजगारी की समस्या हल करने का अध्ययन प्रारंभ हुआ। 1955 में प्रो. प्रशांत को योजना आयोग का सदस्य नियुक्त किया गया और वह लंबे समय तक आयोग की सेवा करते रहे।

लगातार विभिन्न संस्थाओं और विभिन्न पदों पर कार्य करते हुए प्रो. प्रशांत ने सांख्यिकी के अलावा अन्य क्षेत्रों में भी काम किया। उन्होंने बंगाल में राजा राममोहन राय और रवींद्रनाथ ठाकुर के नाम से संबद्ध सामाजिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक आंदोलनों में भाग लिया। उन्होंने जैन धर्म के आर्थिक व अन्य सिद्धांतों का भी गंभीरता के अध्ययन किया। उन्होंने अनेक मॉडल तैयार किए जो राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न अंगों में अधिकतम लागत ज्ञात करने में प्रयोग होते हैं। तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू आर्थिक मामलों में प्रो. प्रशांत से लगातार परामर्श लेते थे। सन् 1956 में प्रो. महालनबीस ने भारत सरकार के समक्ष दूसरी पंचवर्षीय योजना की रूपरेखा रखी।

डॉ पी सी महल्नाबिस बीबीसी में अपने अनुभवों को बताते हुए.

वह विभिन्न राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं से संबद्ध रहे। सन् 1947 से 51 तक वह सांख्यिकीय सैंपलिंग के राष्ट्रसंघीय उपआयोग के अध्यक्ष रहे। सन् 1950 में उन्हें भारतीय विज्ञान कांग्रेस का अध्यक्ष बनाया गया। सन् 1952 में वह सांख्यिकीविदों के ईकाफे कांग्रेस के अध्यक्ष नियुक्त हुए। 1954 में राष्ट्रसंघीय सांख्यिकी आयोग के अध्यक्ष तथा 1957 में अंतरराष्ट्रीय सांख्यिकी संस्थान के अवैतनिक अध्यक्ष भी बने। प्रतिष्ठित रॉयल सोसाइटी ने उन्हें सन् 1945 में ही अपना फेलो निर्वाचित कर लिया था। इसके अलावा वह कला और विज्ञान की विश्व अकादमी के फेलो तथा किंग्स कालेज, कैंब्रिज विश्वविद्यालय के भी फेलो रहे। वह भारतीय विज्ञान अकादमी के भी फेलो थे।

वह समय-समय पर अनेक प्रतिष्ठित संस्थाओं और विश्वविद्यालयों द्वारा उपाधियों से भी विभूषित किए गए। तमाम विश्वविद्यालयों ने उन्हें डी.एस-सी. की उपाधि से सम्मानित किया। ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय ने सन् 1944 में उन्हें वेल्डन पदक प्रदान किया। कलकत्ता विश्वविद्यालय ने उन्हें सन् 1957 में सर्वाधिकारी पदक प्रदान किया। भारत सरकार ने भी सन् 1968 में उन्हें पद्मविभूषण से सम्मानित किया।

प्रो. प्रशांत चंद्र महालनबीस को सारे सम्मान उनके अनुपम कृतित्व से मिले। विश्व के किसी देश में, किसी भी भाषा में अगर सांख्यिकी पर कोई पुस्तक लिखी जाती है तो उसमें महालनबीस का नाम आदर सहित उल्लिखित होता है और उनके तीन सिद्धांत अवश्य शामिल होते हैं। वह उन चंद वैज्ञानिकों में से एक गिने जाते हैं जिन्होंने सांख्यिकी को एक अलग विषय के रूप में विश्व-मानचित्र पर लाकर खड़ा किया। इंग्लैंड के आर.ए. फिशर सांख्यिकी के जनक माने जाते हैं, और प्रो. प्रशांत उनके आरंभिक शिष्य थे।

डॉ. जगदीशचंद्र बसु

पल्लवी जलगांवकर

आधुनिक भारत के प्रथम वैज्ञानिक माने जाने वाले और पेड़-पौधों में भी जीवन है-यह ज्ञान विश्व को देने वाले जगदीशचंद्र बसु के पिता भगवानचंद्र बसु उन्नीसवीं सदी के मध्य में ढाका जिले के फरीदपुर नामक स्थान में डिप्टी मजिस्ट्रेट थे। गरीबों और जरूरतमंद लोगों की दिल खोलकर सहायता करने वाले भगवानचंद्र बसु की पत्नी भी एक सहृदय महिला थीं। उन्होंने 30 नवंबर 1858 को जगदीश को जन्म दिया।

बालक जगदीश को माता बचपन से ही धार्मिक कथाएं सुनाया करती थीं। इससे उनमें धर्म के प्रति आस्था, सात्त्विक भाव और देशभक्ति के गुण उत्पन्न होने लगे थे।

जगदीश में प्रकृति-प्रेम भी बचपन से ही जग गया था। पिता को मिले बंगले में काफी बड़ा अहाता था। पास में पद्मा नदी (गंगा की एक धारा) बहती थी, जिस पर एक छोटा-सा पुल बना था। जगदीश उस नदी की धारा और आसपास का हरा-भरा खूबसूरत नजारा देख-देखकर प्रसन्न होते रहते थे।

गुलामी का जमाना था। पढ़े-लिखे और धनी लोग पश्चिम की नकल करके गौरवान्वित हो रहे थे। दूसरी ओर उच्च पद पर आसीन होकर भी भगवानचंद्र बसु भारतीयता का झंडा थामे हुए थे। उन्होंने वहां एक पाठशाला खोली थी जिसमें आसपास के गरीब बच्चों को बंगला भाषा में शिक्षा दी जाती थी। उन्होंने जगदीश को भी उसी पाठशाला में भर्ती किया। नन्हें जगदीश को गरीब सहपाठियों के साथ घुलने-मिलने, खेलने का अवसर मिला। उन्होंने उनके साथ बैठकर खाना खाया और उनकी तकलीफें भी समझीं। मछुआरों से नाव चलाना, बंसी डालकर मछली पकड़ना सीखा और किसानों से हल चलाना, बीज बोना भी सीखा। मवेशियों को चराना तथा अनेक साहसिक कार्य भी जगदीश ने देखे और सीखे।

विचित्रताएं खुद-ब-खुद उनके जीवन में आ गईं। भगवानचंद्र बसु ने एक मुजरिम डाकू को सजा सुनाई। बाद में सजा पूरी होने पर उन्होंने उसके अच्छे गुणों से प्रभावित होकर उसे घर में नौकर रख लिया। वह नौकर बालक जगदीश को अपने अनुभव सुनाया करता था।

जिज्ञासाएं बचपन से ही जगदीश के बालमन को घेरने लगी थीं। हवा क्यों चलती है? पानी क्यों बहता है? बिजली क्यों चमकती है? ये प्रश्न उठते रहते थे। पिता भगवानचंद्र काफी सवालों का उत्तर दे देते थे, पर फिर भी काफी सवाल रह जाते थे। जगदीश को ग्रामीण जीवन में धार्मिक समारोहों में सम्मिलित होने का अवसर मिलता रहता था। रामायण और महाभारत का उन्होंने बड़े शौक से अध्ययन किया। रामायण से ज्यादा वह महाभारत से प्रभावित हुए। उसके वीर योद्धा ज्यादा साहसी लगे। असफलताओं और अकेलेपन से भरा कर्ण का जीवन उन्हें ज्यादा अपना लगता था। बालक जगदीश समय के साथ उदार हृदय वाले, देशभख्त, बड़ों के प्रति विनीत और सहपाठियों के बीच सहयोगी के रूप में बड़े हुए।

उपरोक्त तमाम ज्ञान अपनी भाषा में मिलने के कारण उन्होंने अधिक ग्रहण किया। समय पर पढ़ने और समय पर खेलना, किताबी कीड़ा बनने के बजाय चिंतन-मनन करके ज्ञान प्राप्त करना जगदीश का स्वभाव बन गया था।

जगदीश मात्र 11 वर्ष के थे, तब भगवानचंद्र बसु को कलकत्ता आना पड़ा। यहाँ उन्हें सेंट जेवियर स्कूल में दाखिल किया गया। यहाँ का माहौल बिल्कुल अलग था। यहाँ उनके सहपाठी सिर्फ अंग्रेजी बोलते थे। गाँव से आए हुए जगदीश को उन्होंने चिढ़ाना और तंग करना प्रारंभ किया। एक दिन एक साथी ने उन्हें घूँसा मारकर घायल कर दिया। गुस्से में आकर जगदीश ने भी उसकी जमकर पिटाई कर दी।

उन दिनों वह एक छात्रावास में रहते थे। उनके ज्यादा दोस्त नहीं थे और वह खाली समय में वैज्ञानिक प्रयोग करते रहते थे। उन्होंने एक छोटा सा पोखर बनाया और उसमें मेंढक व मछलियां पालीं। वह छोटे पौधों को उखाड़कर उनकी जड़ें देखा करते थे। वह छोटे-छोटे जानवर जैसे कबूतर, खरगोश आदि भी पाला करते थे। समय के साथ उनका प्रकृति-प्रेम और पेड़-पौधों में दिलचस्पी बढ़ती चली गई।

इन सब गतिविधियों के साथ उनकी पढ़ाई भी सुचारु रूप से चलती रही। 16 वर्ष की आयु में उन्होंने न सिर्फ प्रथम श्रेणी में मैट्रिक पास किया, वरन उन्हें छात्रवृत्ति भी मिली। उनकी प्रतिभा से सभी प्रभावित थे। उनका प्रवेश सेंट जेवियर्स कालेज, कलकत्ता में हुआ। भौतिक विज्ञान के शिक्षक फादर लेफेंट उन्हें बहुत पसंद करते थे और उन्होंने जगदीश को भौतिकी की ओर आकर्षित किया। जगदीश की रुचि जीव विज्ञान में थी। उन्होंने अब हर विषय में रुचि लेने प्रारंभ किया। विज्ञान और गणित में वह अद्वितीय थे। संस्कृत व लैटिन पर भी उनकी अच्छी पकड़ थी।

स्नातक उपाधि प्राप्त करने और अच्छे अंक लाने के बाद उनके समक्ष दो विकल्प थे–पहला, सिविल सर्विस (शासकीय सेवा) में जाना तथा दूसरा, चिकित्सा सेवा में जाना। उस समय देश पराधीन था। सिविल सेवा का अर्थ गुलामी स्वीकार करना था। चिकित्सा सेवा उन्हें बेहतर लगी।

ईमानदार भगवानचंद्र बसु के पास अपने बेटे को विदेश भेजने लायक धन भी नहीं था। उधर धर्मभीरु माँ बेटे को विदेश भेजना धर्मविरोधी मानती थी। परन्तु बेटे की उच्च शिक्षा की कामना के सामने वह झुक गईं। वह अपने आभूषण भी बेचने के लिए तैयार हो गईं। अंततः भगवानचंद्र बसु ने पैसे का इंतजाम कर लिया।

1880 में 22 वर्ष की आयु में जगदीशचंद्र बसु इंग्लैंड के लिए रवाना हुए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने चिकित्सा विज्ञान में प्रवेश लिया। इसमें उन्होंने भौतिकी, रसायनशास्त्र और वनस्पति विज्ञान के अध्ययन के साथ जीव विज्ञान का भी अध्ययन किया। वहाँ उनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। वह कालाजार नामक बीमारी के शिकार हो गए। उनके एनाटॉमी के शिक्षक ने उन्हें सलाह दी कि वह मेडिसिन की पढ़ाई छोड़ दें क्योंकि भविष्य में इसमें कड़ी मेहनत की आवश्यकता पड़ेगी।

अंततः जनवरी सन् 1881 में उन्होंने क्राइस्ट चर्च कालेज में प्रवेश लिया और प्राकृतिक विज्ञान का अध्ययन प्रारंभ किया। इसके लिए आवश्यक लैटिन भाषा वह पहले ही सीख चुके थे। यहाँ उन्हें छात्रवृत्ति भी मिली।

कैंब्रिज में आने पर उन्हें अनुकूल वातावरण मिला। उनका स्वास्थ्य सुधरने लगा और उनके मित्रों का दायरा भी बढ़ा। जीवन आनंदपूर्वक बीतने से उनका स्वास्थ्य और भी सुधरने लगा। पढ़ाई के अलावा अब वह प्राकृतिक विज्ञान क्लब के भी सदस्य हो गए और उन्हें वैज्ञानिक विषयों पर गंभीर बहस करने और विद्वानों के व्याख्यान सुनने का अवसर मिलने लगा। गरमी की पहली छुट्टियों में वह वारियन द्वीप गए। एक बार वह अपने साथियों के साथ पहाड़ी क्षेत्रों का दौरा करने भी गए।

जगदीशचंद्र बसु को वहाँ के अनेक विद्वान प्राध्यापकों ने तरह-तरह से सहायता दी। सन् 1884 में उन्हें प्राकृतिक विज्ञान में कैंब्रिज से स्नातक उपाधि मिली। उनके विषय भौतिकी, रसायन और जीव विज्ञान से संबंधित थे।

पढ़ाई पूरी करके वह भारत के लिए रवाना हुए। यहाँ आकर वह भारत के वायसराय से शिमला जाकर मिले। वायसराय उनसे प्रभावित हुए और उन्होंने उन्हें इंपीरियल एजुकेशन सर्विस में उचित पद दिलाने का वायदा किया। पर इस पर कार्यान्वयन नहीं हो सका। अंततः वह कलकत्ता स्थित प्रेसीडेंसी कालेज में भौतिकी विज्ञान के प्रोफेसर नियुक्त हुए।

यहाँ आते ही उन्हें विचित्र स्थिति का सामना करना पड़ा। यहाँ भारतीय अध्यापकों को अंग्रेज अध्यापकों की अपेक्षा एक तिहाई वेतन ही मिलता था। स्वाभिमानी डा. बसु को यह बरदाश्त नहीं था और उन्होंने कम वेतन लेने से इनकार कर दिया, परन्तु वह लगातार पढ़ाते रहे और अनुसंधान भी करते रहे। उन्हें अनेक प्रकार के अभावों का सामना करना पड़ा, पर वह निश्चय पर अड़े रहे। अंततः अपने गहन ज्ञान, काम के प्रति उत्साह तथा सुसंस्कृत बरताव से उन्होंने महाविद्यालय के संचालकों को गलत परंपरा तोड़ने के लिए बाध्य कर दिया और बोस को पूरा वेतन मिलने लगा।

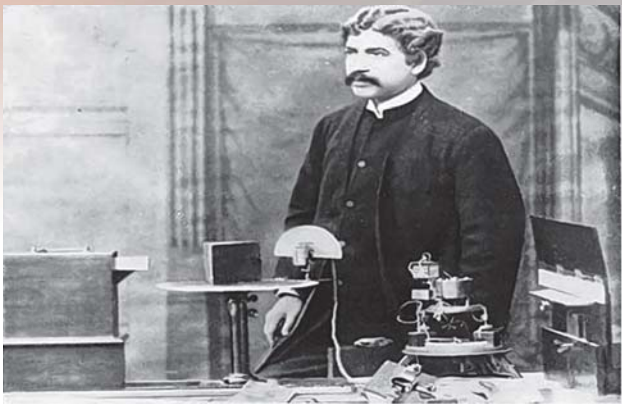

डॉ जगदीश चन्द्र बसु अपनी प्रयोगशाला में

जगदीशचंद्र बसु को परंपरागत तरीके से पढ़ाना रास नहीं आता था। उनका सक्रिय मस्तिष्क हमेशा नई जानकारी और नए विचारों की ओर दौड़ता था। वह लगातार अनुसंधान और नई खोज करना चाहते थे। उसके लिए उन्हें प्रयोगशाला तथा उपकरणों की जरूरत थी। लगातार 8-10 साल तक वह वेतन का एक-एक पैसा बचाते रहे और उन्होंने अपनी प्रयोगशाला की नींव डाली। वह अपने लिए आवश्यक उपकरण भी खुद ही बना लेते थे।

जगदीशचंद्र बसु बिजली की तेजी से अनुसंधान में जुट गए। शीघ्र ही उन्हें बिजली के प्रकाश की किरणों पर अपनी प्रथम खोज के संबंध में नया उपकरण बनाने में सफलता मिल गई। ब्रिटेन की प्रतिष्ठित रॉयल सोसाइटी, जो विज्ञान की सबसे प्राचीन संस्था है, उनकी खोज के प्रकाशन की मंजूरी दे दी। 1896 में ही लंदन विश्वविद्यालय ने उनके शोध-लेख डिफ्रांक्टिंग ग्रेटिंग के द्वारा बिजली की लहरों की लंबाई पर डी.एस-सी. की डिग्री दे दी और इसके लिए उन्हें परीक्षा में बैठाने की भी जरूरत नहीं समझी।

डॉ जगदीश चन्द्र बोस द्वारा विकसित 60 गीगाहट्स माईक्रोवेव उपकरण

लार्ड क्यूलवेल ने उनके काम की भूरि-भूरि प्रशंसा की। फ्रांसीसी अकादमी ऑफ साइंस के भूतपूर्व अध्यक्ष कास्तू ने उनके काम की प्रशंसा के अलावा उनके द्वारा उपकरणों के प्रयोग की भी प्रशंसा की।

इलेक्ट्रो-चुंबकीय लहरों की सर्वप्रथम व्याख्या ब्रिटिश वैज्ञानिक क्लार्क मैकवेल ने की थी। उन्होंने बताया था कि ये लहरें एक जैसी होती हैं और इनमें प्रकाश की विशेषता पाई जाती है जैसे परावर्तन, अपवर्तन आदि।

बसु ने आगे अध्ययन करके बताया कि प्रकाश की लहरों की भाँति ये लहरें भी सीधी रेखा नें गुजरती हैं। उन्होंने यह भी पता लगाया कि जिस प्रकार प्रकाश दर्पण से परावर्तित होता है और स्वच्छ तथा चमकीले माध्यम में उसका अपवर्तन होता है, उसी प्रकार बिजली की लहरों में भी होता है। साथ में कुछ महत्त्वपूर्ण अंतर भी हैं, जैसे, पानी प्रकाश के लिए साफ होता है और प्रकाश इसमें अपवर्तित होता है। इसी प्रकार ईंट, तारकोल आदि में बिजली की लहरों का अपवर्तन होता है, पानी में अपवर्तन नहीं होता है।

प्रारंभ में बसु ने भौतिकी में ही अनुसंधान किया। उन्होंने एक अन्य शोध में बताया कि विद्युत लहरें प्रकाश की भाँति न सिर्फ परावर्तित और अपवर्तित होती हैं वरन पूरी तरह परावर्तित और दोहरे अपवर्तन की विशेषता को प्रकट करती हैं।

जगदीशचंद्र बसु एक स्वाभिमानी वैज्ञानिक थे। अधिकारियों की चापलूसी से वह बचते थे। इस कारण जहाँ एक ओर उनके प्रशंसकों की बड़ी तादाद थी वहीं ऐसे लोगों की कमी भी नहीं थी जो उनकी जड़ काटने में लगे रहते थे। रॉयल सोसाइटी के लार्ड रैले और केल्विन उनके प्रशंसक थे। जब गवर्नन के सामने उन्होंने अपने प्रयोग का कलकत्ता स्थित टाउन हॉल में प्रदर्शन किया तो वह भी उनका प्रशंसक बन गया, पर उनका शिक्षा विभाग उनसे चिढ़ता रहा। इसका प्रमुख कारण बसु का शिक्षा निदेशक से हाँ में हाँ न मिलाना था। इस कारण उनकी उच्च पद पर नियुक्ति रुकी। गवर्नर ने ढाई लाख रुपये की आर्थिक सहायता उन्हें दी। बसु चाहते थे कि उन्हें एक वर्ष का अवकाश मिले, ताकि वह विदेश जाकर अपने अनुसंधानों से दुनिया को अवगत कराएं, पर उन्हें मात्र 6 महीने की ही छुट्टी मिली।

जगदीश चंद्र बसु का काफी जीवन अभावों के बीच गुजरा पर उनमें पैसा कमाने की इच्छा कभी नहीं रही। अनेक ब्रिटिश उद्योगपतियों ने उनके आविष्कारों के प्रयोग के एवज में भारी रकम का प्रस्ताव किया, परन्तु उन्होंने ठुकरा दिया।

वह लगातार प्रयोगों में लगे रहे। उन्होंने अनेक ऐसे यंत्र बनाए जो हट्र्ज की लंबी रेडियो तरंगों को दर्ज कर सकते थे। वह विद्युत-चुंबकीय लहरों को ध्रुवित करने में भी कामयाब हुए। उन्होंने मेलाइट नामक विशेष स्फटिक का आविष्कार भी किया जो विद्युत

लहरों को उसी प्रकार निर्देशित करता है जिस प्रकार प्रकाशपुंज करता है। इससे संचार-क्रांति को एक दिशा मिली।

सन् 1898 तक जगदीशचंद्र बसु विश्वविख्यात हो चुके थे। अब उन्होंने भौतिकी से हटकर बायोफिजिक्स अर्थात् जैवभौतिकी में कदम रखा।

दरअसल उन्हें बचपन से ही जीव-जंतुओं से अपार प्रेम था। वह अपना काफी पैसा अपने जीव-प्रेम में लगा देते थे। यदि कालेज के दिनों में जीवशास्त्र के अध्ययन की उचित व्यवस्था होती तो शायद वह भौतिकी में कदम रखते ही नहीं।

सन् 1900 में पेरिस के अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में शिक्षा विभाग द्वारा अवकाश न दिए जाने के कारण वह कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि के रूप में गए। उन्हें बोलने के लिए कम समय मिला, परन्तु उन्होंने उसी में उपस्थित जन-समुदाय को मंत्रमुग्ध कर डाला। स्वामी विवेकानंद भी वहाँ मौजूद थे। विश्व के अनेक वैज्ञानिकों ने उनके कार्य के लिए उन्हें बधाई दी।

पेरिस से वह लंदन गए जहाँ उन्हें लंदन में रहकर अनुसंधान करने का निमंत्रण मिला। उन्होंने गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर से विचार-विमर्श कर आगे लंदन में अनुसंधान करने का निर्णय किया। उन्होंने ऐसे उपकरण और यंत्र बना डाले जो पौधों में वृद्धि की रफ्तार को एक करोड़ गुना विशाल बनाकर दिखला देते थे। उनके यंत्र से पौधे की गति के सेकंड के हजारवें भाग को भी देखना संभव था। किसी भी कंपन को दस लाख गुना बढ़ाकर दिखाना भी उनके उपकरणों के लिए संभव था। उन्होंने बैलेंस्ड क्रैस्कोग्राफ भी बनाया जिससे पौधे को उत्तेजित करने से बढ़ती या घटती दर को नापा जा सकता था। इन उपकरणों की भारी प्रशंसा हुई।

अब भौतिकी की ही तरह जीव विज्ञान में भी उनके एक के बाद एक शोध-पत्र प्रकाशित होने लगे। अक्टूबर 1902 में बसु वापस कलकत्ता आ गए। यहाँ पर उन्होंने पेड़-पौधों की गतिविधियों का अध्ययन प्रारंभ किया। उन्होंने सिद्ध किया कि पेड़-पौधे भी प्राणियों की तरह से ही जीवन-यापन करते हैं।

अपने तजुरबे पर उन्हें किस कदर विश्वास था यह इस बात से जाहिर होता हे कि एक बार उन्होंने अपने प्रयोग का सार्वजनिक प्रदर्शन करने का निर्णय किया। बड़ी तादाद में वैज्ञानिक व सामान्य व्यक्ति उनका प्रयोग देखने आए। उन्हें यह साबित करना था कि पेड़-पौधों को भी पीड़ा होती है और विष देने से वे भी मर जाते हैं। बसु ने पौधे में जहर का इंजेक्शन लगाया। अनुमान के अनुसार चंद क्षणों में उस पौधे को मुरझा जाना था, पर पेड़ ज्यों का त्यों खड़ा रहा।

कुछ लोग हँसने भी लगे पर बसु विचलित नहीं हुए। उन्होंने तुरंत कहा कि अगर यह विष पौधे को नुकसान नहीं पहुँचा सकता तो यह मुझे भी नुकसान नहीं पहुँचा सकता है। वह अपने-आपको उस विष का इंजेक्शन देने के लिए तैयार हो गए।

तभी एक आदमी सामने आया और उसने अपनी शरारत स्वीकार की। उसने विष की जगह उसी रंग का पानी शीशी में भर दिया था। जब बसु ने असली विष का इंजेक्शन लगाया तो पौधा जल्दी ही मुरझा गया।

पेड़-पौधों पर वह लगातार अनुसंधान करते रहे और उनके परिणाम शोध-पत्रों के रूप में सामने आते रहे। पौधों की संरचना, सूर्य के प्रकाश का पौधों पर प्रभाव, आदि पर वह संसार को नवीनतम जानकारी देते रहे। उन्होंने दुनिया को बताया कि रात में पौधे थोड़ा-सा सिकुड़ जाते हैं और वे रोशनी की ओर बढ़ते हैं, चाहे इसके लिए उन्हें मुड़ना भी पड़े। छुईमुई पौधे को देखकर सभी लोग आश्चर्य करते हैं। बसु ने भी इसका गहन अध्ययन किया और साबित किया कि सभी पौधे मनुष्य के छूने से सिहर उठते हैं। बाकी पौधों की सिहरन नंगी आँखों से नहीं देखी जा सकती है। छुईमुई कुछ ज्यादा सिहर जाता है, इसीलिए एक पत्ता छूते ही इसके सारे पत्ते सिकुड़ जाते हैं।

शिकागो में एड्विन बेर्बेट लुईईस के घर में सर जे सी बोस के साथ उनकी पत्नी अबला बोस और अन्य मित्रगण

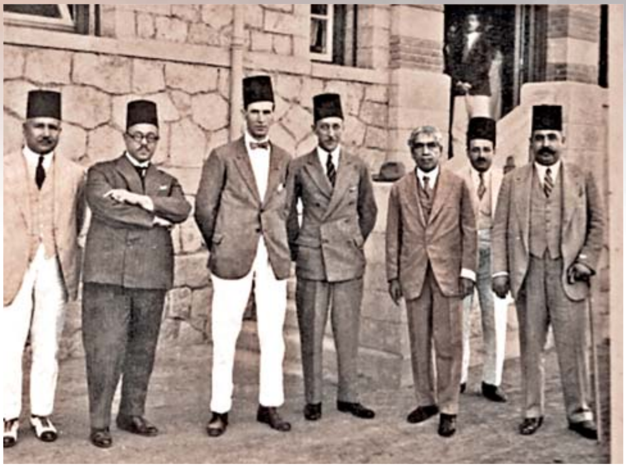

सितंबर 1928 में मिस्त्र, कायरो शहर के रॉयल जिओग्रफिकल सोसाईटी में सर जे सी बोस कृषि मंत्रालय के अधिकारीयों के साथ

पहले भौतिकशास्त्र और फिर जीव विज्ञान के गहन अध्ययन के पश्चात् उन्होंने दोनों का कुशलता से समावेश किया और जीव-भौतिकी नामक नई धारा का विकास किया। उन्होंने पौधों पर निद्रा, वायु, प्रकाश, औषधि, भोजन, थकान, उत्तेजनशीलता को प्रदर्शित करने वाले सटीक उपकरणों का आविष्कार किया। इनमें रेजोनेंट रिकार्डर, फाइटोग्राफ, फोटो सिंथेटिक रिकार्डर आदि प्रमुख हैं। उन्होंने पौधों और पशुओं में काफी हद तक समानता साबित करके दिखला दी।

सन् 1907 में भारत सरकार ने उन्हें इंग्लैंड भेजा और वहाँ उन्होंने अपने अनुसंधानों का प्रदर्शन किया। उसके बाद वह अमेरिका गए, जहाँ उनका भव्य स्वागत हुआ। 1909 में वह भारत लौटे।

जगदीशचंद्र बसु को देश विदेश में अनेक सम्मान और अलंकरण मिले। सरकार ने उन्हें अनेक देशों में अनुसंधान-प्रदर्शन के लिए भेजा। जब 1913 में वह नियमानुसार अवकाश-प्राप्ति के लिए तत्पर हुए तो सरकार ने उनकी सेवा 1915 तक बढ़ा दी। सन् 1915 में अवकाश-प्राप्ति के बाद भी सरकार उन्हें पूरा वेतन देती रही।

उन्होंने अपने संचित धन तथा त्रिपुरा, बड़ौदा, पटियाला आदि रजवाड़ों के नरेशों से प्राप्त आर्थिक सहायता से कलकत्ता में बसु अनुसंधान संस्थान की स्थापना की और जीवन-पर्यंत इसमें कार्य करते रहे। इस संस्थान में उन्होंने चार एकड़ जमीन में बड़ा भवन बनवाया, जिसमें विज्ञान की तमाम विधाओं में अनुसंधान करने के लिए उपकरण व अन्य संसाधन थे।

जगदीशचंद्र बसु का लेखन उत्कृष्ट था। उनके 80 लेख जर्मनी, फ्रांस, इंग्लैंड की चोटी की पत्रिकाओं में छपे। उनकी दस पुस्तकें छपीं। उन्हें साहित्य व बंगला भाषा से भी बहुत प्रेम था। बंगीय साहित्य परिषद के वह सभापति भी रहे। गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर से उनकी घनिष्ठ मित्रता थी और वह उनसे साहित्य-चर्चा करते रहते थे।

जगदीशचंद्र बसु कट्टर राष्ट्रवादी थे। अंग्रेजी शासन उन्हें कतई नापसंद था और वह खुलकर स्वतंत्रता संग्राम में कूदना चाहते थे पर स्वामी विवेकानंद ने उन्हें रोका। उन्होंने उनसे कहा कि विज्ञान ही उनके लिए राष्ट्रीयता है और वह उसी क्षेत्र में कार्य करके देशसेवा करें। सन् 1913 में कलकत्ता में हुई उनकी अभिनंदन-सभा में नेताजी सुभाषचंद्र बोस ने कहा था कि मैंने प्रो. बसु से कठिन परिस्थितियों में सिर उठाकर चलना सीखा है।

उन्होंने अपने समय के वैज्ञानिकों को नई राह दिखलाई। भारतीय वैज्ञानिक प्रफुल्लचंद्र राय उनके मित्र थे और भगिनी निवेदिता उनसे बहुत प्रभावित थीं। उन्होंने अपने किसी आविष्कार से कोई धन नहीं प्राप्त किया।

उनकी पत्नी अबला बसु ने आजीवन उनका साथ दिया। चूँकि उनका अधिकांश जीवन गरीबी और कर्ज में बीता, अतः वह काफी सोच-समझकर पैसा खर्च करती थीं। उनकी एकमात्र संतान शीघ्र ही ईश्वर को प्यारी हो गई थी। विज्ञान की छात्रा रहीं अबला बसु पति के अनुसंधान-कार्यों में हाथ बँटाती थीं।

अपने जीवन के अंतिम चार वर्ष वह बीमार रहे। कलकत्ता की जलवायु अनुकूल न पाकर वह बिहार के गिरीडीह नामक स्थान में विश्राम के लिए गए। 2 नवंबर 1937 को वह वापस कलकत्ता आए। 22 नवंबर 1937 को उन्होंने बसु संस्थान की पत्रिका का प्रूफ पढ़ा। उसके बाद उन्होंने जन गण मन अधिनायक और वंदेमातरम् को ग्रामोफोन पर सुना। अगले दिन 23 नवंबर को प्रातःकाल स्नानागार में गिरने से उनका देहांत हो गया।

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका ने उन पर टिप्पणी कीः जगदीशचंद्र बसु की उपलब्धियाँ उनके समय के हिसाब से इतनी आगे थीं कि उनका मूल्यांकन करना संभव नहीं था।

वास्तव में उनके वैज्ञानिक कार्यों का गहन मूल्यांकन-कार्य वैज्ञानिकों द्वारा किया जाता रहा और सन् 1945 तक यह काफी हद तक पूरा किया गया। माँ भारती के ऐसे सपूत को कोटि-कोटि नमन!

पथानी सामंता

सत्यनारायण प्रधान

खगोल विद्या का विकास सभ्यता के आरम्भ में ही विकसित हुई लेकिन व्यापक प्रसिद्धि नहीं मिली थी। इसका धीरे-धीरे विकास विभिन्न चरणों में हुआ है। 17वीं शताब्दी के मध्य में गैलीलियो नामक विदेशी खगोल शास्त्री ने इसे समाज में मान्यता दिलाई लेकिन कटरपंथी समाज ने इसे अधार्मिक कार्य मानते हुए दंडित किया था। प्राचीनकाल से ही भारत में अनेकों विद्धवान हुए जिनका योगदान पश्चिमी खगोल शास्त्रीयों से उन्नत तथा सरल था। वेदों के युग से वर्तमान तक भारत भूमि ने अनेको खगोल शस्त्री उत्पन्न किया है जैसे आर्य भट्ट वाराह मिहिर, ब्रहम गुप्त, भास्कर सतंदा श्रीपति आदि। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग काल में हुए थे। ये सभी खगोल शास्त्री खुले आंख से खगोल विद्या के बारे में जानकारी बताते थे। इसी कड़ी से उड़ीसा में उत्पन्न एक महर्षि का योगदान अप्रतिम है। महामहोपाध्याय चन्द्रशेखर सिंह हरिचंन्दन मोहापात्रा सामंता को लोग पथानी सामंता के नाम से जानते थे। इनका जन्म परतंत्र भारत के उड़ीसा राज्य के नायागढ़ जिला में खड़गपाडा रियासत के राजवंश में 13.12.1835, दिन रविवार को हुआ था। यह रियासत पूरी के नजदीक थी। कुछ वैधानिक अवरोधो के कारण इनको राज करने का अधिकार नहीं मिला और इन्होने अपना जीवन तपस्वी के रूप में सम्मानसहित गरीबी में बिताया था लेकिन सामाजिक सोच के कारण इन्होने खगोल विद्या के बारे में गहन शोध किया।

इनकी प्रारम्भिक शिक्षा संस्कृत में हुई थी। इसके अलावा उड़ीया साहित्य में भी गहन रूचि थी। इनके पिता अच्छे विद्वान थे इसलिए इनको ज्योतिषशास्त्र के बारे में अध्ययन कराया था। उड़ीया और संस्कृत के अलावा इन्हें किसी दूसरी भाषा का ज्ञान नहीं था क्योंकि पुस्तकें उपलब्ध नहीं थी।

पाथानी सामंता के पिता का नाम सामंता श्याम बंधुसिंह और माता का नाम श्रीमती विशनू मलि था । इनके पिता खड़क पाड़ागढ के राजा थे।

इनका परिवार परम्परावादी था फिर भी अपनी लगन के कारण ज्योतिष विद्या का स्वअध्ययन किया और ग्रहों की गति का निरीक्षण अपनी आंखों से करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुंचे जो आज के वैज्ञानिकों द्वारा यंत्रो की सहायता से प्राप्त गणना के बिलकुल करीब थी। वह एक गणित के उच्चस्तरीय विद्वान थे

और अपने गणितीय गणना के माध्यम से खगोल विज्ञान में विशेष स्थान बनाया। अपने व्यापक और गहन अध्ययन, प्रयोग के माध्यम से एकत्र ज्ञान को काव्यरूप में "सिद्धान्त दर्पण" नामक पुस्तक में संग्रहीत किया। उस समय गद्य साहित्य का विकास समुचित रूप से नहीं हुआ था। अपनी विद्वता का परिचय उन्होने खगोल विज्ञान के क्षेत्र में प्रमाणित किया। इसके लिए उन्होने अलग-अलग क्षेत्रों में प्रयोग किया और अनेकों उपकरणों का विकास किया। "मानयंत्र" की खोज (मापन यंत्र के रूप में) गोलयंत्र की खोज (परिधीय उपकरण मापन के लिए) "सूर्यघड़ी" (समय मापन के लिए सनडायल) की खोज ने इनको एक विशेष वास्तुकार के साथ अभियांत्रिकी कौशल युक्त व्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठापित किया। उनकी रूचि फटाके तैयार करने में भी थी जिसे वह किसी निश्चित ऊचाई पर विस्फोट कर सकते थे।

वह पहले भारतीय खगोल शास्त्री एवं विद्वान थे जिन्होने बांस की पाईप की सहायता से पृथ्वी से आसमान की दूरी मापने की कोशिश किया । इस प्रयोग के कारण ब्रिटीश सरकार ने कटक में एक विशेष समारोह का आयोजन सन् 1893 में किया और महामोहापाध्याय की उपाधि से इन्हें सम्मानित किया। उनकी लिखी पुस्तक "सिद्धान्त दर्पण" का उल्लेख यूरोप तथा अमेरिकन प्रेस में सन् 1899 में किया गया था। समंता की गणना का उपयोग उड़ीसा में पचांग तैयार करने में किया जाता है।

"सिद्धान्त दर्पण" का लेखन 12 अप्रैल 1869 से आरम्भ होकर पूर्णरूप से 12 नवम्बर 1892 को पूरा हुआ। पूरी पुस्तक में 2500 श्लोक हैं जिसमें से 2148 श्लोक उनके हैं। पथानी सामंत ने हजारो वर्ष पहले भारतीयों की ज्ञान खगोल विद्या का निरीक्षण, सत्यापन और शुद्धिकरण अपने ज्ञान से किया। उनके द्वारा तैयार गणित के सूत्र को "कौतुका पंजी" कहा जाता है। अपने उच्च शैक्षणिक उपलब्धि के कारण इतिहास में "पंजिका संस्कार" का निरूपण किये। सन् 1876 में उनके पंचांग गणना को पूरी के श्री जगनाथ मंदिर में धार्मिक क्रिया कलाप की गणना करने के लिए स्वीकार किया गया। सूर्य सिद्धान्त की सहायता से उन्होने अनेक नई प्रणालीयो की खोज किया है। जैसे कि ज्यो-ज्यो चन्द्रमा अपनी स्थिति अन्य ग्रहो की ओर बदलता है तो चन्द्रमा का सही देशांत्तर निर्धारित कठिन होता है। इसलिए चन्द्रशेखर ने नई खोज तीन सिद्धान्तों का किया यथा तुंगतंत्र, पक्षिका, और दिगाम्सा। इनके माध्यम से चन्द्रमा की देशांतर स्थिति का पता लगाया जा सकता है। इसीप्रकार सभी ग्रहो की देशांतर स्थिति शुद्धरूप से निश्चित करने के लिए नये सुत्र बनाये।

कहा जाता है कि कटक के ब्रिटीश आयुक्त श्री कुक के निवेदन पर पथानी सामंता ने अपने बनाये यंत्र की सहायता से सप्तसंख्या पहाड़ी की उचाई का मापन एकदम शुद्धता के साथ किया था। उन्होने सरल उपकरणों के सहयोग से ग्रहों एवं नक्षत्रों के उदय, अस्त तथा गति का बिना किसी दूरदर्शक यंत्र की सहायता से निरीक्षण कर अपनी नापो एवं फलों को उडिया लिपि तथा संस्कृत भाषा में लिपिबद्ध किया ।

यूरोपीय विद्वान मॉडर के अनुसार यूरोपीय ज्योतिषियों द्वारा अतिआधुनिक बहुमुल्य एवं जटील यंत्रो की सहायता से प्राप्त खगोलीय ज्ञान और सामंता द्वारा प्राप्त ज्ञान में मामूली अंतर है। यह अंतर बुधग्रह के नक्षत्रकाल में 0.0007 दिन तथा शुक्रग्रह के नक्षत्रकाल में केवल 0.0028 दिन का है। इनके द्वारा प्राप्त ज्ञान सूर्य नक्षत्रों के बारे में अधिकतर शुद्ध है। जीवन के अंतकाल में वह पैदल चलकर पुरी के श्री जगन्नाथ मंदिर आये और सन् 1904 में वही आंखमुद ली।

महान खगोल विद् के नाम पर उड़ीसा की राजधानी भुवनेश्र्वर में श्रद्धांजली स्वरूप सरकार ने पथानी सामंता प्लेनेटोरियम का निर्माण कराया है। ऐसे महान ज्योतिषाचार्य और खगोल विद्वान को शत् शत् नमन

पथानी सामंता द्वारा आविष्कृत विभिन्न यंत्र एवं सौर मंडल का प्रारूप

चक्र यंत्र

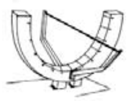

चाप यंत्र

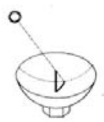

गोलार्द्ध यंत्र

स्वयंभा यंत्र

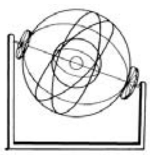

गोल यंत्र

मान यंत्र

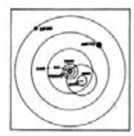

सौर मंडल प्रारूप

13वीं हिन्दी सम्मेलन और कार्यशाला में राजभाषा अकादमी द्वारा मुख्य अतिथि से "श्रेष्ठ गृहपत्रिका" का पुरस्कार प्राप्त करते हुए श्री पी डी सिद्दीकी, सहायक प्रबंधक (राजभाषा)

आशीर्वाद साहित्यिक संस्था की ओर से मुख्य अतिथि डॉ सत्यनारायण जटिया (सांसद) द्वारा "श्रेष्ठ गृहपत्रिका" का पुरस्कार प्राप्त करते हुए श्री रामप्रीत यादव और श्री पी डी सिद्दीकी, सहायक प्रबंधक (राजभाषा)

माझगांव डॉक शिपबिल्डर्स लिमिटेड
राष्ट्र के पोत निर्माता

Skill India
कौशल भारत - कुशल भारत

Digital India
Power To Empower

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर